इंदिरा गांधी अनछुए प्रसंग



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

पढ़ें और सीखें योजना

इंदिरा गांधी

अनछुए प्रसंग

शीला झुनझुनवाला

विभागीय सहयोग

हीरालाल बाछोतिया

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

अगस्त 1992
भाद्र 1914
PD 15 T-PM

प्रकाशन सहयोग

सी. एन..राव : **अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग**

प्रभाकर द्विवेदी : **मुख्य संपादक**
पूरनमल : **संपादक**

यू. प्रभाकर राव : **मुख्य उत्पादन अधिकारी**
डी. साई प्रसाद : **उत्पादन अधिकारी**
चंद्र प्रकाश टंडन : **कला अधिकारी**
कर्ण कुमार चड्ढा : **वरिष्ठ कलाकार**
राजेन्द्र चौहान : **उत्पादन सहायक**

मूल्य : रु. 7.50

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित, एस. पी. इलेक्ट्रनिक्स फोटोटाइप सेटर्स द्वारा फोटोकंम्पोज होकर, राकेश प्रेस, ए-7, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले चौबीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघ-शासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के रूप में लेखन की दिशा में एक महत्त्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके

अंतर्गत, "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएँगी। हम आशा करते हैं कि1992 के अंत तक हिन्दी में हम निम्नलिखित विषयों पर 50 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

क. शिशुओं के लिए पुस्तकें
ख. कथा साहित्य
ग. जीवनियाँ
घ. देश-विदेश परिचय
ङ सांस्कृतिक विषय
च. वैज्ञानिक विषय
छ. सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद् इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक 'इंदिरा गांधी: अनछुए प्रसंग' के लेखन के लिए श्रीमती शीला झुनझुनवाला ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप

देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिंदी में "पढ़ें और सीखें" पुस्तकमाला की यह योजना प्रो० अनिल विद्यालंकार (अवकाश प्राप्त) के मार्ग-दर्शन में चल रही थी, जिसे अब डा० अर्जुन देव दिशा दे रहे हैं। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डा० रामजन्म शर्मा, डा० सुरेश पांडेय, डा० हीरालाल बाछोतिया और डा० अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का कार्य हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डा० रामदुलार शुक्ल देख रहे हैं। योजना के संचालन में डा० बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

डॉ. के. गोपालन
निदेशक
नई दिल्ली राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

अपनी बात

हमारे देश भारत के हजारों साल के इतिहास में सबसे चमकीला पहलू है, यहाँ समय-समय पर हुए महान व्यक्ति जो आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी यादों से निकलता प्रकाश हम तक उसी तरह आ रहा है जैसे आकाश से नक्षत्रों का प्रकाश धरती तक आता है। वैदिक ऋषियों से शुरू होकर अब तक चली आ रही महानता की इस परम्परा में सबसे ताजा नाम है इंदिरा गांधी का।

इलाहाबाद में गंगा के किनारे स्थित आनंदभवन (स्वराज भवन) में 19 नवम्बर 1917 को पहली बार आँखें खोलने से लेकर 31 अक्टूबर 1984 को नई दिल्ली में विश्वासघाती अंग रक्षकों की गोलियों से देहत्याग करने तक की इंदिरा जी की जीवन यात्रा अपने आप में किसी महाकाव्य से कम नहीं है। मानव जीवन के विविधता से भरे पक्षों का हर रंग उसमें मौजूद है।

इंदिरा जी का जन्म राजसी वैभव के बीच हुआ। उस समय के देश के सबसे मशहूर वकीलों में से एक मोतीलाल नेहरू की पौत्री और उदीयमान बैरिस्टर जवाहरलाल नेहरू की पुत्री के रूप में सारे परिवार की लाड़ली इंदिरा जिसे उसके पिता प्रियदर्शिनी कहते थे, अपने शैशव के दिनों में थी कि तभी नेहरू परिवार देश की आजादी के लिए चल रही लड़ाई की मुख्यधारा में कूद पड़ा। फूलों के बिस्तर पर पलने वाले काँटों से भरे रास्ते पर चल पड़े।

उसी समय सात-आठ साल की इंदिरा "जोन ऑफ आर्क" बनने के सपने बुनने लगी थी। बचपन में ही उसने वानर सेना का गठन कर अपनी संगठन और नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया। इस वानर सेना ने जो कार्य किए, वे अब हमारी आजादी की लड़ाई के इतिहास का एक हिस्सा हैं और उसके सुनहले पन्नों में सुरक्षित हैं।

इंदिरा जी की शिक्षा या अध्ययन का सिलसिला इस तरह औपचारिक रूप से क्रमबद्ध नहीं चला जैसे आम बच्चों का चला करता है। सब कुछ लीक से हट कर चला। पूना के विद्यालय में हालाँकि वे कुछ वर्षों तक नियमित छात्रा रहीं पर वास्तव में ज्ञानार्जन होता रहा उन पत्रों से जो उनके पिता जेल से उन्हें लिखते रहे। किशोर अवस्था में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांतिनिकेतन में उन्हें भारतीयता के संस्कार मिले। व्यापार, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, संस्कृति, कला, जैसे क्षेत्रों में तीव्र गति से हुई हमारी प्रगति देखकर पश्चिम के विकसित राष्ट्र भी दाँतों तले उँगली दबाने लगे। राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक मामलों में हमारा महत्त्व इतना बढ़ गया कि आज सारी दुनिया में भारत की एक विशिष्ट पहचान है। पिछले दो दशक में हुई विविध उपलब्धियों का श्रेय अगर किसी को जाता है तो निःसंदेह श्रीमती इंदिरा गांधी के विवेकपूर्ण नेतृत्व को।

इंदिराजी के जीवन, विचारों और कार्यों पर सहज, सुबोध व रोचक ढंग से प्रकाश डालने वाली प्रस्तुत पुस्तक मूल रूप से किशोर वय के पाठक वर्ग के लिए लिखी गई है। इस महान नारी के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रेरणा लेकर हमारे पाठक यदि अपने जीवन में कुछ आदर्शों, संकल्पों व मानवीय मूल्यों को अपने में आत्मसात करने में सफल हुए तो पुस्तक के लेखन का परिश्रम सार्थक मानूँगी।

शीला झुनझुनवाला

इंदिरा गांधी : अनछुए प्रसंग

सन् 1930 की बात है। 12-13 साल का एक छोटा-सा बच्चा बड़ी फुर्तीली चाल में रेलवे स्टेशन की ओर चला आ रहा था। रेलवे स्टेशन था इलाहाबाद। इस बच्चे की तरफ किसी का ध्यान नहीं था। देश में आजादी की लड़ाई जोरों से छिड़ी हुई थी। गांधीजी का "नमक सत्याग्रह" चल रहा था। सारे देश में स्वतंत्रता की भावना का सागर उमड़ पड़ा था। उनके सत्याग्रह ने लोगों की भावनाओं को लहरा दिया था। यह लहर अंग्रेजों के पैर उखाड़े दे रही थी। एक ओर महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल जैसे नेताओं द्वारा बताया गया अहिंसात्मक आंदोलन चल रहा था, दूसरी ओर क्रांतिकारी गतिविधियाँ भी चलती रहती थीं। अंग्रेज जैसे-तैसे भारत की धरती पर कदम टिकाये हुए थे। वह समय ऐसा था कि जब जरा-सी बात पर अंग्रेजी सरकार की पुलिस के कान खड़े हो जाते थे। वे इतने निर्मम और कठोर हो चुके थे कि भोले-भाले निहत्थे भारतीयों पर भी पागलों की तरह टूट पड़ते। ऐसे समय में जब सब तरफ बेचैनी और डर का अंधेरा फैला हुआ था, वह बच्चा तेजी से सीना ताने रेलवे स्टेशन की ओर लपका जा रहा था।

किसी का ध्यान उसकी ओर नहीं गया। सड़कें और गलियां पुलिस से भरी हुई थीं। हर निगाह चौकन्नी और खुंखार। पर उसकी ओर सब अनदेखा किए हुए। ठीक भी था —भला कौन

सोच सकता था कि वह बच्चा भी आजादी की लड़ाई का एक सिपाही है।

बच्चा स्टेशन पहुँचा। प्लेटफार्म पर खड़ा हुआ कुछ देर अपनी मासूम नजरों से एक-एक चेहरे को घूरता रहा। इस तरह जैसे सभी को पहचानने की कोशिश कर रहा है। फिर उसकी आँखों में चमक पैदा हो गई। शायद उसने उसे ढूंढ लिया था, जिसकी उसे तलाश थी।

बच्चा बड़ी सावधान नजरों से इधर-उधर देखता हुआ, प्लेटफार्म की एक टेबल पर चुपचाप बैठे अधेड़ व्यक्ति की ओर बढ़ा। उसकी चाल में इतनी निश्चिंतता और लापरवाही थी कि पुलिस वालों का उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं गया। वे बड़ी आयु के लोगों की आँखें देख रहे थे। उनके चेहरों से यह समझने-पहचानने की कोशिश कर रहे थे कि कहीं उनमें कोई ऐसा आदमी तो नहीं है जो गांधी के आंदोलन से जुड़कर सक्रिय काम कर रहा हो?

वैसे पुलिसवालों क़ो भी किसी की तलाशी थी...उन्हें दो दिन पहले खबरें मिल गयीं थीं कि इलाहाबाद के लोगों का सत्याग्रह जत्था दस पन्द्रह व्यक्तियों के कई समूहों में नमक सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने वाला था। इस आंदोलन का ऐसे लोग नेतृत्व करने वाले थे, जिनमें से कुछ की अंग्रेज पुलिस कई दिनों से तलाश में थी। वे लोग गांधीजी के विश्वसनीय साथियों में से थे। उनका जनता पर बहुत प्रभाव भी था।

पर पुलिस को यह पता नहीं था कि ये लोग कब, किस दिन, कहाँ मिलेंगे? कहां बैठ कर फैसला करेंगे कि किस तरह जत्थे रवाना होंगे। यही कुछ पता करने के लिए बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों, शहर के होटलों, सार्वजनिक स्थानों पर गुप्तचर घूम रहे थे...रेलवे स्टेशन पर भी वर्दी वाले और बिना वर्दी के पुलिसवालों की कमी न थी। वे जानते थे कि ऐसी ही जगहों से

जत्थों की रवानगी की तिथि और बैठक करने वाले नेताओं की परस्पर सूचनाएँ कांग्रेसी स्वंय ले जा रहे होंगे।...उन पर कड़ी नज़र रखी जाने वाली थी।

सब ओर इस कड़ी नज़र का जाल बुना हुआ था, इन नजरों से अपना बचाव करता हुआ वह बच्चा, सीट पर बैठे एक ग्रामीण से बातें कर रहा था। बातों ही बातों में उसने चुपके से एक चिट निकालकर किस समय उस ग्रामीण के हाथ में थमा दी थी, किसी को पता ही न चला...

पुलिसवाले घूमते रहे...बच्चा जिस तरह आया था उसी तरह वहाँ से वापस भी हो गया...

निश्चित दिन, निश्चित स्थान पर बैठक हुई। उसमें आंदोलन संबंधी बातों पर विचार विमर्श हुए। नेता मिले-जुले। उन्होंने अगले कार्यक्रम निश्चित किये और यहीं पहली बार यह पता चला कि उन सभी को एक-दूसरे के बीच समाचार देने-पहुँचाने का काम दस से 15 साल के बच्चों या बच्चियों ने किया था। वे हैरान रह गए...ये बच्चे किसने और कैसे संगठित किये हैं?

कुछ ही दिनों में सबको मालूम हो गया कि बच्चों का यह संगठन आनंद महल से चला है...यह भी मालूम हुआ कि बच्चों के इस दल का नाम "वानर सेना" है। सेना के सदस्य तैयार किए हैं जवाहरलाल नेहरू की बेटी इंदिरा गांधी या इंदु ने।

सब आश्चर्यचकित रह गये। लोग नेहरू परिवार के प्रति श्रद्धा से भर उठे। अनेक ने उसी समय कह दिया था—देख लेना, किसी दिन नेहरू की बेटी, बहुतों से, बहुत आगे काम कर दिखायेगी ...जिस छोटी-सी लड़की में यह भावना हो, हिम्मत हो, वह बड़ी होने पर तो चट्टान जैसी साबित होगी।

इंदिरा गांधी उस समय केवल 13 साल की थी। जन्म से ही स्वतन्त्रता संग्राम का दावानल देखा था उन्होंने। उसी दावालन

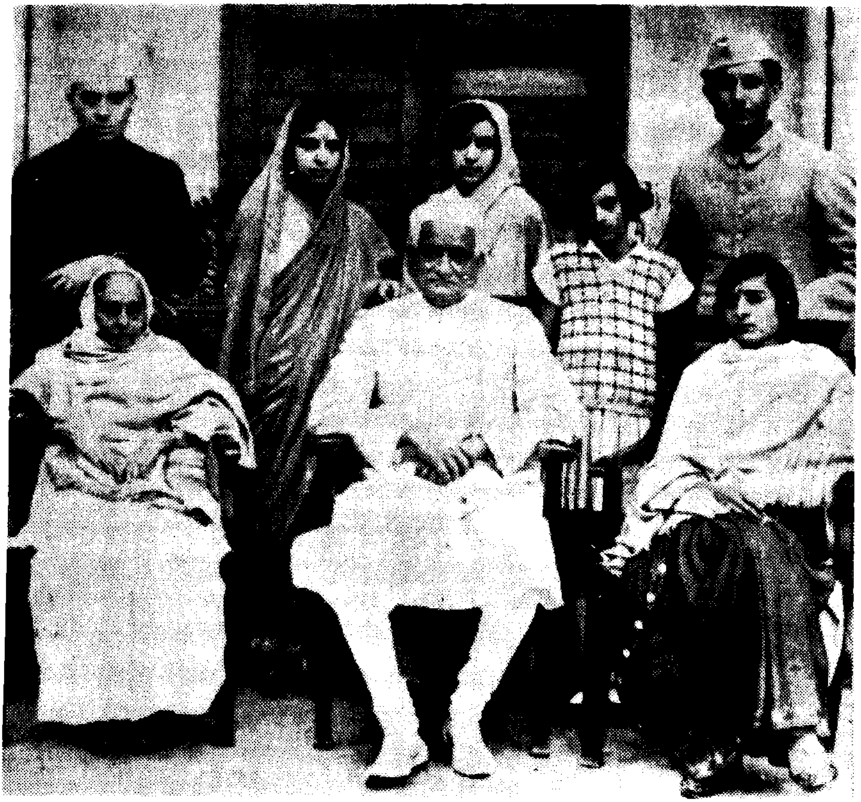


किशोरी इंदिरा

में तपकर उनके भविष्य और कर्म की अगली कहानी तैयार हुई। वे दिन ऐसे थे, जब परिवार का कोई न कोई सदस्य देश की आजादी का सिपाही बना हुआ जेल में रहा करता था ...किसी बार पिता जेल में हैं, किसी बार माँ, किसी बार बुआ और किसी बार फूफा...नेहरू परिवार जिस मकान में रहता था, वह

कहलाता था "आनंद महल"। इस शानदार और महलनुमा मकान की हर दरो-दीवार पर स्वतंत्रता आंदोलन की कहानियाँ दर्ज हो गई थीं। इन्हीं कहानियों से इंदिरा के बचपन ने शिक्षा लेनी शुरू की। पुस्तकों को कक्षा में पढ़ा, पर जीवन में क्या करना है—यह शिक्षा परिवार के उस संस्कार ने दी जो गांधी जी के स्वतंत्रता आंदोलन में तन-मन-धन से अर्पित हो चुका था। उस घर के नौकर तक स्वतंत्रता सेनानी बन चुके थे।

इंदिरा गांधी का जन्म हुआ था 1917 की 19 नवम्बर



माता-पिता और दादा के साथ

को... सुंदर, सलोनी, सुकुमार कली-सी इंदिरा। माँ कमला नेहरू और पिता जवाहरलाल नेहरू के स्नेह दुलार से सजी-सँवरी इस नन्हीं कली की जन्मपत्री बड़े-बड़े ज्योतिषियों ने देखी थी। जब ग्रह-योग निकाले, उसी समय बाबा पंडित मोतीलाल नेहरू से उन्होंने कह दिया था – आपकी पोती उस हीरे जैसी है, जिसका प्रकाश पाकर लोग चकाचौंध हो जाते हैं, यह एक ऐसा चरित्र होगा जो इतिहास में सदा स्मरण किया जाता रहेगा ...

दादा ने उसका नामकरण किया था – "इंदिरा"...पर पिता को इस बेटी का नाम पुकारते हुए एक सुखमय आंनद की अनुभूति होती थी। इस कारण उन्होंने नाम दिया "प्रियदर्शनी"।

प्रियदर्शनी इंदिरा ने "आनंद महल" में बड़ों के अपार लाड़ प्यार के बीच पलना, बढ़ना शुरू किया। एक गोद से दूसरी गोद में जाते हुए उनके बचपन का प्रारंभ हुआ। हर गोद में उन्होंने दुलार की मुलामियत के साथ-साथ सारे देश और देशवासियों की आज़ादी की लड़ाई वाली गर्माहट भी पायी...

गांधीजी का आंदोलन लगातार तेज होता जा रहा था। उसी तेजी के साथ-साथ तेजी पकड़ रहा था आंदोलन का युवा नेतृत्व। उसके अगुआ बने हुए थे इंदिरा के पिता श्री जवाहरलाल नेहरू। वह युवकों के ह्दय सम्राट कहलाते थे। उनकी एक आवाज पर पूरी युवक पीढ़ी आज़ादी की लड़ाई के साथ जुड़ गई थी...और उसका जुड़ाव धीमे-धीमे उस जलजले का रूप ले रहा था, जिसने ब्रिटिश राज की जड़ें झुलसानी शुरू कर दी थीं। वह वातावरण कैसा था, और उसके बीच किस तरह इंदिरा पलीं और बढ़ीं इसका विवरण देते हुए पंडित कमलापति त्रिपाठी ने एक जगह लिखा है ...

...रूस में जिस समय ज़ारशाही से मुक्ति के लिए राज्य-क्रांति का बिगुल बजा, उसी समय नेहरू परिवार में प्रियदर्शनी इंदिरा का जन्म हुआ। वह तपोमयी तिथि थी, 19

नवम्बर 1917 की। इंदिरा जब तीन वर्ष की थीं, तभी वह अपने घर में ऊंची मेज पर खड़ी होकर नौकरों के सामने जोर-जोर से भाषण करतीं।

पूरे परिवार में ''इंदू'' के नाम से पुकारा जाता था उन्हें। पिता कई बार ''बेटी'' को बेटा कहकर बुलाते और दादा भी प्यार से उन्हें ''बेटा'' ही कहा करते थे। जिन दिनों पहली-पहली बार जवाहरलाल नेहरू जेल गए, उन दिनों इंदिरा की आयु केवल 4 वर्ष की थी। इस तरह से बालपन में ही आजादी की भावना ने आत्मा से जुड़ाव ले लिया था। उससे कहीं ज्यादा इंदिरा बचपन से ही हर स्थिति का मुकाबला धैर्य और संयम से करना सीख गई। यही धीरज और संयम था, जो इंदिरा के बाकी जीवन में सारे देश ने देखा। उससे सीखा।

बच्ची की पलक हर नए सूर्योदय के साथ जब खुलती तो देश और उसका रंग बदला हुआ मिलता था। यह वातावरण बालिका के मन को अधिक से अधिक कठोर भी करता जाता था। अधिक से अधिक तेल की आंच में तपाता भी जाता था। पूरे परिवार ने स्वाधीनता संग्राम में कुरबानियों का इतिहास लिखना ज़ारी रखा। उसी इतिहास का एक पृष्ठ जाने-अनजाने ही कोमल मन बालिका के मन मस्तिष्क में जड़ता चला गया। जैसे किसी शिलालेख पर अक्षर खुद जाते हैं, वैसे ही इंदिरा के मन पर आज़ादी के अक्षर खुद चुके थे।

बच्ची बड़ी होती रही और उसके साथ ही बुनियाद मजबूत होती गई। मन पर लिखे अक्षर ज्यादा और ज्यादा गहरे होते गए। फिर उसे देखना समझना प्रारंभ किया। इस देखने समझने में ही उसे अपने घर-आंगन में देश की आजादी के सबसे बड़े नेताओं का स्नेह मिला। महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, वल्लभभाई पटेल, आचार्य कृपलानी, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद, रफी अहमद किदवई, **आसफअली** आदि को इन्दिरा ने बचपन से न सिर्फ

देखा, बल्कि उनके साथ आनंद महल में एक नहीं, अनेक अविस्मरणी क्षण बिताए। इन महान नेताओं की बातें वे ध्यान से सुनती रहतीं थीं। बड़ी-बड़ी बातें करते थे वे। हर बात देश और स्वतंत्रता से जुड़ी हुई। हर बात क्रांति का शंखनाद करती हुई। हर बात किसी श्लोक की तरह पवित्र और मन की तरह अमोल।

"आनंद महल" में खानदानी शानोशौकत और भोग-विलास की वस्तुओं की कमी न थी। दादा और पिता किसी राजा की तरह वैभवशाली रहे थे। स्वतंत्रता के संघर्ष में कूदकर उन्होंने सब कुछ त्यागकर एक तपस्वी जीवन का आरंभ कर दिया था। इंदिरा ने भी देखा सब, पर चाहा केवल स्वतंत्रता को।

सुभाषचन्द्र बोस, खान अब्दुल गफ्फार खाँ, सरोजिनी नायडू आदि के जीवन का भी उन पर बहुत असर हुआ। उनकी सादगी और सरलता ने भी इंदिरा को बहुत प्रभावित किया। उससे कहीं ज्यादा प्रभावित हुआ उनका बालमन उनकी निर्णयशक्ति से, उनके साहसी और जुझारू व्यक्तित्व से।

यह साँचा था, जिसमें इंदिरा का बचपन ढला। इस साँचे से धीमे-धीमे जिस इंदिरा का व्यक्तित्व बना, उसी की देन थी—"वानर सेना"।

संगठन शक्ति इंदिरा गांधी में बचपन से ही थी। इसका प्रमाण उनकी कम आयु में "वानर सेना" का गठन है। इस वानर सेना ने स्वतंत्रता के आन्दोलन में आश्चर्यजनक काम किया। "वानर सेना" के छोटे-छोटे बच्चे बिल्कुल सैनिक अनुशासन से बँधे हुए थे। वे स्वतंत्रता आन्दोलन के नेताओं को जहाँ-तहाँ समाचार पहुँचाने, पुलिस की गतिविधियों की खबर देने के आलावा सावधान भी रखा करते थे। यह "वानर सेना" कांग्रेस के अधिवेशनों में भी सक्रिय भाग लिया करती। भोजन परोसने से लेकर पंडाल की व्यवस्था देखने, जगह-जगह लोगों की सेवा करने, आन्दोलन के दौरान घायल हो जाने वाले अहिंसक

आन्दोलनकारियों की मदद करने के साथ-साथ दवाओं को वितरित करने का काम भी करती। 13 साल की आयु में ही इंदिरा के इस सुगठित अनुशासनबद्ध स्वयं सेवकों ने जो कर दिखाया था, उससे साबित होता था कि इंदिरा में अनुशासन के साथ-साथ संगठन और संचालन की आश्चर्यजनक क्षमता मौजूद है। बाद में यही क्षमता और योग्यता अधिक विकसित रूप में करोड़ों लोगों ने देखी।

यह सेना, किस तरह, क्या कुछ करती थी, इसका वर्णन करते हुए एक बार एक वृद्ध कांग्रेसी नेता ने कहा था "इंदु की वानर सेना में मैं काफी बड़ी उम्र का था, पर इंदु की लीडरी में काम करना अच्छा लगता था। उसी जमाने में नेतृत्व की सारी क्षमता थी उसमें"।

"जैसे?" "उनसे पूछा गया था।"

"बहुत कुछ। अजी, ऐसे बहुत से काम हम लोग संभाल लिया करते थे, जिनके बिना सम्मेलन का मजा फीका पड़ सकता था। उसमें अव्यवस्था भी हो सकती थी..."

"जैसे?"

"जैसे, जहाँ मीटिंग होती है, वहाँ सफाई करना। सामान जहाँ-तहाँ लगाना, प्याऊ खोलना, पानी पिलाना, झंडे तैयार करना, जब गर्मियों में जुलूस निकलते थे तो उनके लिए पानी भर-भर कर लाना। रास्ते पर दौड़ते हुए पानी पिलाते चलना। यह सब "वानर सेना" ही किया करती थी।"

इसके आगे भी वानर सेना क्या-क्या करती थी, इसका ब्यौरा देते हुए उन सज्जन ने बतलाया था "कई-कई बार वानर सेना के कांग्रेसी बालक खतरे भी उठाया करते थे। जैसे यहाँ-वहाँ आदमियों को संदेश पहुँचाना, शहर में कहीं कोई घटना हो जाये, कांग्रेस के किसी वर्कर को चोट आ जाए तो उसकी सूचना तुरंत कांग्रेस के कार्यालय और नेताओं तक पहुँचा देना ... इस तरह के

कामों में अनेक बार वानर सेना के कांग्रेसी बच्चों को कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ जाता था।'' अक्सर क्रांतिकारियों के संदेश शहर से दूर गाँवों में रह रहे उनके परिवारों तक पहुँचाने पड़ते थे। शहर में कर्फ्यू लगा होता था। पुलिस जुलूसों पर लाठीचार्ज करती थी फिर 4 दिन लगें या पाँच, संदेश तो पहुँचाना ही होता था। कई बार पुलिस बच्चों को पकड़ लेती थी, टोकती थी। डाँटती-डपटती भी थी। कई बार वैसे ही भगा देती थी, फिर भी बच्चे इस रास्ते से नहीं तो उस रास्ते से, धक्के खाते-खाते पुलिस की पकड़ से बचते हुए अपने ध्येय तक पहुँच ही जाते थे। सबके मन में एक भावना रहती थी, कि यदि काम नहीं हुआ तो अपनी नेता इंदिरा को क्या मुँह दिखाएँगे। ऐसा था वानर सेना का काम।

''जैसे मैं, अपनी ही बात बतलाऊँ,'' उन सज्जन की आँखों में चमक आई थी –'' एक बार ''आनंद भवन'' में ही ड्यूटी पर था तो इंदिरा ने बुलाया। कहा कि कोई क्रांतिकारी है ... मुझे नाम तो ठीक से याद नहीं आता ... ''उन्होंने माथे पर बल डालकर याद किया था, ''फिर बेबस होकर बोले..'' तो उन क्रांतिकारी का संदेश मुझे इलाहाबाद शहर के बाहर गाँव में रह रहे उनके परिवार तक पहुँचाना था ...शहर में कर्फ्यू लगा हुआ था...दो दिन पहले ही कांग्रेस के एक जुलूस पर पुलिस नेलाठी-चार्च किया था। तनाव फैला हुआ था सब तरफ। और ऐसे में निकलकर मुझे उन क्रांतिकारी के गांव तक पहुँचना था।''

कैसे पहुँचे''?

''पहुँच गये।... बहुत कठिनाई नहीं हुई थी। चार-पाँच दिन लगे ... और चार-पाँच जगह पर पुलिस वालों ने पकड़ा, टोका, डाँटा-डपटा, कई बार भगा भी दिया, इस रास्ते नहीं तो उस रास्ते, धक्के-खाते-खाते, पकड़े जाते और छूटते हुए पहुँच ही गए साहब।... ऐसा था वानर सेना का काम।''

''वानर सेना'' की स्थापना पर पंडित जवाहरलाल नेहरू बहुत खुश हुए थे। उन्होंने बेटी से कहा था – ''तू तो सचमुच बेटा ही है''।

1934 की बात है! संयोग था कि जवाहरलाल जी श्रीमती कमला नेहरू को साथ लेकर शांति निकेतन पहुँचे। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की देखरेख में चल रहे इस स्कूल को देखकर ही उन्होंने निश्चय किया कि बेटी को सही शिक्षा और संस्कार देने के लिए शांति निकेतन से अच्छा कोई स्कूल नहीं है। इससे पूर्व इंदिरा पूना के ''प्यूपिल स्कूल'' में पढ़ी थीं। परिवार में बहुत विचार-विमर्श हुआ।

कारण यह था कि इंदिरा बचपन से ही बड़े लाड़-प्यार में पली और बड़ी हुई थी। ''शांति निकेतन'' में जीवन बड़ा कठोर था। वहाँ बच्चों को अपने पैरों पर खड़े होने की, स्वावलम्बन पर जीने की शिक्षा दी जाती थी। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने पूरी तरह भारतीय वातावरण में इस स्कूल को प्रारंभ किया था। वहाँ बिल्कुल गुरूकुलों जैसा जीवन था। इंदिरा के परिवार वाले सोच रहे थे कि इंदिरा वहाँ का कठोर जीवन किस तरह जी पाएँगी?

पर अंत में जवाहरलाल जी की इच्छा ही पूरी हुई। स्वयं इंदिरा गांधी ने भी पढ़ने के लिए ''शांति निकेतन'' को पसंद किया। पिता की तरह वह भी चाहती थीं कि जीवन की कठोरताओं का सामना करना आना ही चाहिए। इस जीवन में मनुष्य को बहुत बुरे-भले दिन देखने पड़ते हैं। इसलिए उसे चाहिए कि वह हर हालात का मुकाबला करने के लिए अपने आपको तैयार रखे।

इंदिरा 1934 में शांति निकेतन पहुँचीं। वहाँ न तो नौकर-चाकर थे, न ही कोई खोज खबर लेनेवाला। वहाँ का जीवन कठोर था। स्वयं को नियमपूर्वक चलाना था। वहाँ का अनुशासन बड़ा कड़ा था। अरामपरस्ती तोड़ने वाले बहुतेक

नियम थे वहाँ, जिन कमरों में छात्र-छात्राएँ रहते थे, वहाँ कितनी भी गरमी क्यों न हो, पंखे नहीं लगते थे। सारी पढ़ाई लालटेन की रोशनी में होती थी। हर सुबह स्नान के समय अपने-अपने कपड़े, छात्र धोएँ, यही नियम था। रसोई से लेकर हर काम में छात्र ही जुटते। उनकी ड्यूटी लगती रहती थी। पर सबके बीच स्नेह था। सब एक दूसरे से गहरा प्रेम करते थे। मातृभूमि के प्रति लगाव वाली रचनाएँ पढ़ाई सुनायी जाती थीं। देश की आजादी का पाठ मिलता था।

दुबली-पतली इंदिरा ने ''शांति निकेतन'' के उस नियमबद्ध जीवन के साथ अपने आपको ढालना प्रारंभ किया और कुछ ही दिनों में वह वहाँ की सभी छात्राओं में सबसे आगे मानी जाने लगी। उन्होंने शिक्षक-शिक्षिकाओं से गहरा स्नेह कमा लिया। सब उन्हें पसंद करने लगे। सब उनके नाजुक, सुकुमार शरीर के बावजूद समझ गये कि लड़की में कठोरता और साहस भी अद्भुत है।

स्वयं इंदिरा गांधी ने शांति निकेतन के उस जीवन काल को लेकर कई बार बाद के जीवन में कहा, ''मैंने वहीं, भारत को देखा, सीखा, उसको समझा और महसूस किया ...''

इंदिरा ने इस तरह बहुत छोटी आयु में ही जीवन के उतार-चढ़ाव का ऐसा सिलसिला देख-समझ लिया कि वह लोगों के बीच रहते हुए भी उनसे अलग एक व्यक्तितत्व में ढल गई। उन्होंने ''शांति निकेतन'' के जीवन में ही शायद पहली-पहली बार गीता के तत्व को अपने जीवन में ढाल लिया। लगातार कर्मयुद्ध में जूझते रहने का जीवन। छात्रा के रूप में शांति निकेतन की कठोर शिक्षा पाने के बाद इंदिरा बहुत से स्कूलों, कालेजों में पढ़ीं, इन्काल नेवल स्कूल बेक्स, वेड मिन्टन स्कूल ग्रिस्टल, समरवेल कॉलेज और आक्सफोर्ड में भी उन्होंने शिक्षा प्राप्त की।

इंदिरा ने बचपन में ही ''जॉन ऑफ आर्क'' को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। उस समय इंदिरा शायद 7 और 8 साल की रही होगी। उनकी फूफी कृष्णा हठी सिंह ने एक दिन इंदिरा को होठों ही होठों में कुछ बुदबुदाते-बड़बड़ाते हुए सुना।

हैरान होकर कृष्णाजी इंदिरा के पास जा पहुँचीं। पूछा – ''इंदु क्या हो रहा है?''

''कुछ नहीं'' इंदिरा बोली, मैं ''जॉन ऑफ आर्क'' बनने के लिए अभ्यास कर रही थी। जब कुछ बड़ी हो जाऊँगी तो जॉन ऑफ आर्क की तरह ही अपने देश की जनता का नेतृत्व करूँगी।''

कृष्णाजी मुस्कराकर रह गईं। इस प्रकार बचपन में ही ''जॉन ऑफ आर्क'' के जुझारू व्यक्तित्व की प्रेरणा इंदिरा के बालमन में जग चुकी थी। यही वह अंकुर था, जो बढ़ती उम्र के साथ-साथ एक गहन वट वृक्ष बनता गया।

इंदिरा को परिवार में बहुत कुछ मिला था। उन्होंने बला की अमीरी देखी थी। अमीरी भी ऐसी कि बड़े-बड़े राजा, महाराजा शरमा जाएँ। ममता और दुलार उन्हें दादा, दादी, बुआ, माँ और पिता सभी से मिला था। अपने दादा मोतीलाल नेहरू से उन्होंने सीखा था जीवन के प्रति उत्साही नज़रिया कैसे रखा जाए। आनंद भवन जो आजकल ''स्वराज भवन'' कहलाता है, एक तरह का महल है। इस महल में अगर राजाओं जैसा जीवन जिया गया था, तो यही महल था, और इसी में स्वतंत्रता लड़ाई का एक अजेय दुर्ग बना दिया गया था। इस तरह इंदिरा गांधी को बचपन से ही झांसी की रानी जैसा सुख और संघर्ष देखना, भोगना पड़ा। इस सुख और संघर्ष की लड़ाई ने उन्हें सचमुच ही सोने की तरह निखार दिया।

''आनंद महल'' और आज के ''स्वराज भवन'' के बारे में बहुत कम लोगों को बहुत कम बातें मालूम हैं। लोग समझते हैं

कि यह नेहरू जी और इंदिरा जी का पुश्तैनी घर भर है, पर यह कम लोगों को ही मालूम है कि आनंद महल का अमीरीवाला जीवन क्या था और स्वराज की लड़ाई वाला जीवन क्या रहा है?

मुरादाबाद के राजा परमानंद पाठक से इस महल को खरीदा गया था, पर वह "पुराना आनंद महल" था– नये आनंद महल को जवाहरलाल जी के पिता पंडित मोतीलाल जी ने बनवाया था। इसे बनाने का काम किया था इलाहाबाद के ही बच्चाजी ने। पंडित मदनमोहन उपाध्याय ने इसमें एक पहाड़ी बनवाई, जिसकी सजावट बड़े ही प्राकृतिक ढंग से की गई थी। बाद में "पुराने आनंद महल" को कांग्रेस के लिए दे दिया गया। कालांतर में यह स्वतंत्रता की लड़ाई का अविजित महल बना। इसमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय की स्थापना की गई। बड़े-बड़े नेता आने लगे। नए और पुराने आनंद महल के जीवन ने एक ऐसी इंदिरा को बचपन से ही ढाला, जिसके व्यक्तित्व में एक शासक के गुण भी थे। सामान्य वातावरण से मिली शिक्षा ने अनजांने ही इंदिरा गांधी को जनता और प्रशासन के बीच एक पुल की तरह तैयार कर दिया।

स्वतंत्रता की लड़ाई ने जैसे-जैसे गति पकड़ी, वैसे-वैसे इंदिरा के बचपन ने, किशोरावस्था ने, और फिर जवानी ने कई तूफान देखे, झेले। उन्होंने जहाँ दादा और पिता के रूप में एक संघर्षशील और प्रभावशाली व्यक्तित्व को परखा, वहीं दूसरी और अपनी माता श्रीमती कमला नेहरू का सरल, सादा और भोले बच्चे जैसा स्वभाव भी देखा। कमला जी ने स्वतंत्रता आंदोलन में परिवार के हर सदस्य से कहीं आगे बढ़-चढ़कर भाग लिया था। वे बराबर बीमार चल रहीं थीं। पर लड़ाई से जुड़े सिपाही की तरह वह कभी भी मोर्चे से नहीं कतराईं।

स्वर्गीया कमला नेहरू कैसी थीं और उनका स्वभाव कैसा था, यह जाने-समझे बिना कोई इंदिरा जी को नहीं समझ सकता,

इसलिए उनकी माता के बारे में समझ लेना जरूरी है।

कमलाजी अनेक बार जेल गईं, यहाँ तक कि अपनी बीमारी के समय भी उन्होंने जेल से कभी मुँह नहीं मोड़ा। पर उनके अन्दर की वेदना को बहुत कम लोग जानते थे। एक तो वह सरल थीं, दूसरे बहुत ममतामयी थीं। उनका मन देश, पति और नन्हीं बेटी के बीच हमेशा ही चक्रवात की तरह घूमता रहता था। स्वभाव से चूंकि वह धार्मिक थीं, इस कारण ऐसे अवसर पर जबकि मन में ज्यादा अशांति या पीड़ा उभरती, वह गीता सुना करती थीं, श्रीमती सरस्वती कपूर ने अपने एक संस्मरण में उनकी जेल-यात्रा का वर्णन किया है।

''नमक सत्याग्रह'' का तूफानी दौर था उस वक्त। महिलाओं ने भी कांग्रेस के इस सत्याग्रह में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। देश के अनेक हिस्सों से महिलाओं ने बड़ी संख्या में अपनी गिरफ्तारियाँ दीं। इनमें विद्यावती राठौर, सरस्वती कपूर स्वयं, उमा नेहरू, पूर्णिमा बनर्जी आदि थीं। यह लोग जेल-जीवन काट रही थीं कि तभी उन्हें समाचार मिला कि श्रीमती कमला नेहरू भी गिरफ्तार कर ली गई हैं और लखनऊ जेल में ही लाई जा रही हैं। जिस समय कमलाजी को जेल लाया गया, उस समय वहाँ उपस्थित सभी बंदियों ने उनके स्वागत में जोरदार नारे लगाए। जय-जयकार की। इसमें बंदी महिलाएँ भी शामिल थीं। कमलाजी सभी के अभिवादनों का मुस्करा-मुस्करा कर जबाव दे रही थीं। उन्हें शीघ्र ही उनके बैरक में पहुँचा दिया गया।

कोई नहीं जानता था कि कमलाजी को उस समय भी निरतंर ज्वर रहा करता था। उनके चेहरे की उत्फुलता के कारण उनकी बीमारी का किसी को पता नहीं चल पा रहा था। दृढ़ निश्चय के कारण वह बीमारी को भीतर ही भीतर रखे हुए थीं, चेहरे पर या अपने शरीर श्रम में किसी तरह उसे उभरने नहीं

देती थीं। सबको पता उस समय चला, जब उत्तर प्रदेश के उस समय के गवर्नर नवाब छतारी उन्हें देखने जेल में पहुँचे। बातों-बातों में उन्हें पता लग गया कि कमलाजी एक गंभीर बीमारी लिए जी रही हैं। नवाब साहब ने उनकी बीमारी सुनकर आदर और सम्मान के साथ उनके स्वास्थ्य की जानकारी ली और इलाज की व्यवस्था करवाई। महिला सत्याग्रहियों में पीड़ा की एक लहर कौंध गई। पर कमला थीं कि उनके चेहरे पर शिकन नहीं आई। साथी कैदी महिलाओं से उनकी भेंट होती तो वह बीमारी की बात से हमेशा ही कतरा जातीं। जब कभी कोई कुछ पूछता तो हँसकर टाल देतीं।

सरस्वती कपूर से उन्होंने गीता का अर्थ और पाठ सुनना प्रारंभ किया। गीता का पाठ वे तन्मय होकर सुना करती थीं। कभी-कभी उनके मन से भीतरी उद्‌गार भी फूट निकलते थे। ऐसे ही एक समय का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है – ''जवाहर अपने देश पर दीवाने हैं। काश, आजादी की इतनी लगन और बहुत से लोगों के मन में होती। लेकिन और सबकी सीमाएँ हैं। जवाहर सीमाहीन हैं। काश, मेरे मन में भी इतनी ही लगन होती कि मैं जवाहर के स्टेंडर्ड के भीतर आ जाती। मैंने इस बार जी-जाम सै कोशिश शुरू की है। जवाहर जेल में होते हैं तो घर में मेरा मन जरा भी नहीं लगता। मैं चाहे किसी अन्य जेल में रहूँ तो लगता है कि सानिध्य में हूँ। लेकिन हमारी एकमात्र बेटी का भी प्रश्न है। हम दोनों जेल में हों तो उसका जतन कौन करेगा एक नारी के मन के द्वंद का इससे अच्छा चित्रण और कहाँ मिलेगा। उपरोक्त घटना से जाहिर है कि कमला ममता और कर्म के बीच किस तरह मधुरता और कठोरता का जीवन में समन्वय किये हुए थीं और शायद यही गुण इंदिरा जी में भी आया।

उनके बचपन के जिस संघर्ष का वर्णन पहले आया है। उसमें यह साफ झलकता है कि उन्होंने राजमहल में रहकर भी

अपने माता-पिता, भाई-ब्रन्धु,परिजनों, संबंधियों से सदा ही एक दूरी झेली। जब ये लोग घर पर होते थे, तब स्वतंत्रता आंदोलन के कार्यक्रम, भेंटवार्ता करने वाले उन्हें घेरे रहते। जेल में होते तब उन्हें उनका एकांत सताता रहता था। पर इस एकांत से अलग इंदिरा थी जो महल में रहकर भी जेल-सा सन्नाटा भोगती। चुप्पियों के बीच उनकी कामनाएँ, इच्छाएँ, मुलायम सपने सिसकते रहते।

संभवतः इस वातावरण ने ही उन्हें बेबसी और रसहीनता से भी जीवन को देखने समझने का अवसर दिया था। फिर उन्होंने ऐसे अवसर भी देखे थे, जबकि अपने नाजुक और सदा सुविधा संपन्न माता-पिता को संघर्ष करते और जेल का कष्ट सहते पाया।

एक बार का जिक्र करते हुए उन्होंने स्वंय ही अपने एक संस्मरण में कहा था – (यह संस्मरण उन्होंने उस समय का सुनाया, जबकि वे बहुत छोटी थीं और अपनी माता श्रीमती कमला नेहरू को लेकर उन्होंने अनुभव किया।)

... 'मेरी माँ' इस विषय पर बोलना किसी लड़की के लिए कितना कठिन है। मन में हजारों तस्वीरें आती हैं। कौन-सी आपके सामने रखूँ। अपने रंज को भूलने के लिए उन सबको बरसों से छिपाने की कोशिश कर रही थी, लेकिन आपके लिए उनका परदा खोलती हूँ। कुछ खास बात तो बतला नहीं सकती क्योंकि हमारी जिंदगी जनता के सामने एक खुली किताब की तरह है। और आप उससे परिचित होंगे।

जो पहली बात मुझे याद है, वह उस जमाने की है जब गांधीजी को हिन्दुस्तान में आए कुछ वर्ष हुए थे। सत्याग्रह, स्वदेशी और खादी जैसे इंकलाबी आंदोलन ख्याल पैदा हुए थे। इनका असर मेरे पिता और दादा पर जोरों से पड़ा। दावतें बंद हुईं। मखमल, साटिन आदि उतारे गए। खादी पहनना शुरू हुआ और वह कैसी खादी थी – खुरदरी, टाट जैसी मोटी। माँ कमला



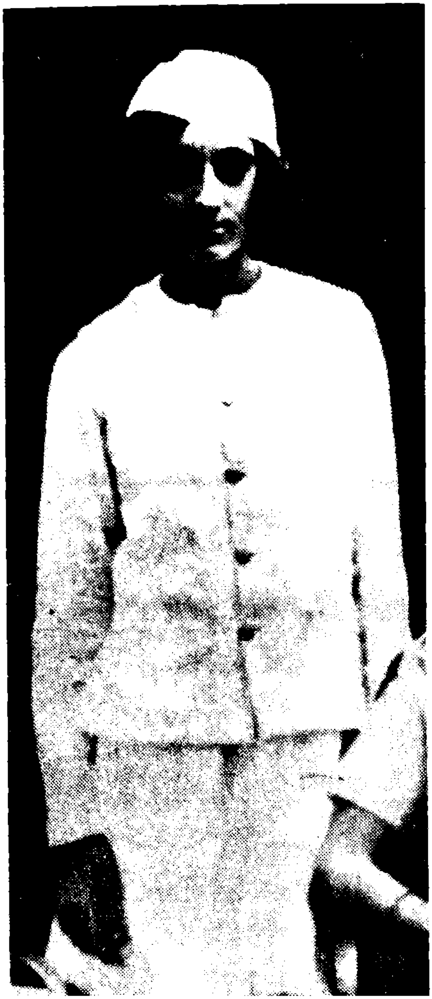
माता-पिता के साथ

नेहरू का सारा शरीर छिल जाता था, किंतु इस लिबास में भी उनकी खूबसूरती और नजाकत फूल जैसी खिलती थी।

.... उस वक्त मेरे दादा की वकालत खूब चल रही थी और

वे प्रांत के सबसे बड़े आदमियों में गिने जाते थे। बड़े दिमाग और बड़े दिल के आदमी थे। शौकीन तबीयत के। खूब कमाते थे, खूब खरचते थे। हमारा घर हमेशा मेहमानों से भरा रहता था। तरह-तरह के लोग – बड़े अफसर, लेखक, कवि, हिन्दुस्तानी आदि आते रहते थे। रोज दावतें होतीं और दादा जी की हंसी से घर गूंज उठता। घर के दो हिस्से थे। एक तरफ अगंरेजी तरीके से बैठने और खाने के कमरे और दूसरी तरफ देसी तरीके के थे। रोज दोनों तरह के खाने बनते। मेरी फूफी की मेट्रन अंगरेज थीं। हमारी मोटर चलानेवाला भी एक अंग्रेज मिस्टर डिक्सन था। कश्मीरी घरों में औरतें पर्दा नहीं करतीं। मेरी दादी विलायत घूम आयी थीं, तब भी घर की संभाल और मेहमानदारी का बोझा अधिकतर मेरी माँ पर पड़ा। नए तरीके सीख ही रही थीं कि जिंदगी पलट गयी और सारा परिवार बहुत जोरों से कांग्रेस के आंदोलन में भाग लेने लगा। जेल की यात्राएँ तथा अनेक कठिनाइयाँ शुरू हुईं। अपने उत्साह और हिम्मत में मेरी माँ ने गांधीजी पर कुछ असर डाला होगा, क्योंकि गांधीजी ने खासतौर पर स्त्रियों को पुकार दी कि वे भी बाहर निकलें और काम का बोझ उठाने में अपने भाइयों को सहायता दें। माँ अपने बचपन का प्रण नहीं भूलीं थीं। जीवन भर जहाँ भी गांधीजी जाते, औरतों को परदे से निकालने का प्रयत्न करते और समझाते कि अपने अधिकारों के लिए किस तरह से लड़ें। उनके कहने से हजारों औरतें कांग्रेस का काम करने के लिए निकलतीं। 17 वर्ष की उम्र में जब वह अपने माता-पिता का घर छोड़कर आनंद भवन की इस दुनिया में आईं तो उनको क्या मालूम था कि कितने लम्बे और दुखभरे मार्ग पर चलना होगा। एक दफा उन्होंने मरदों का लिबास पहना सन् 1930 में, जब कांग्रेस बटालियन बनी थी। मुझे भी बचपन में अक्सर लड़कों के कपड़े पहनाती थीं। इससे जनता को बड़ी हैरानी होती थी। अक्सर लोग मुझसे पूछते

''तुम्हारा भाई कहाँ है? '' मैं जवाब देती कि मेरा कोई भाई नहीं है तो कहते ''वाह हमने अपनी आंखों से देखा है।



माँ को अब बीमारी घेर रही थी, फिर भी वे कांग्रेस की वालिन्टयर बनीं और लोगों में काम करती रहीं। बाद में जब नेता लोग गिरफ्तार होने लगे तो वे और जोरों से काम में कूद पड़ीं। इलाहाबाद शहर और जिले का संगठन अपने ऊपर इस बल और दृढ़ता के साथ उठाया कि सब लोग दंग रह गए। चारों और उनकी योग्यता की प्रशंसा हुई। उनके पति जवाहरलालजी ससुर मोतीलालजी फूले न समाए, लेकिन सबके मन में चिंता भी थी कि उनकी सेहत आहिस्ता-आहिस्ता टूट रही थी मगर वे किसी की भी न सुनतीं। सन् 1930 में आखिर वे कांग्रेस वर्किंग कमेटी की सदस्या बनाई गईं और थोड़े दिन बाद ही गिरफ्तार कर ली गईं। गिरफ्तारी की खबर रात को ही मिल गई थी। उस रात हम लोग जागते रहे। ऐसे मौकों पर भी उनको दूसरों का ख्याल होता। जो भी काम अधूरे रह गए थे, उनको पूरा करने की कोशिश की, जिसमें उनके जाने के बाद किसी को कठिनाई न हो।

गांधी जी की पुकार पर लाखों नर-नारी अहिंसक आंदोलनकारियों से पूरे देश की जेलें भर चुकी थीं। स्वतंत्रता की लड़ाई का वह तूफानी अंधड़ चल रहा था जिसमें जुलूस थे, लाठीचार्ज थे, निहत्थे भारतवासियों पर गोलीबारी थी। किसी बार सत्याग्रह का नाम होता, नमक आंदोलन; किसी बार विदेशी वस्त्र बहिष्कार। इंदिरा परिवार के नौकर तक जेलों में पहुँचने लगे। इंदिरा स्वयं स्कूल-दर-स्कूल बदलती हुई जैसे-तैसे मन को पढ़ाई से जोड़े हुए अपनी किशोरावस्था को संस्कार देती रहीं। हालात ऐसे थे। जिन्होंने छोटी-सी किशोर आयु की बच्ची के भीतर एक साथ तमाम उम्र के अनुभव और व्यवहार भर दिए। इन सबसे व्यक्तित्व को एक नया मोड़ मिला।

इसी उम्र में उन्होंने देश का अर्थ भी समझ लिया, विदेश का भी। दोनों के भीतर श्रेष्ठ क्या है? यह चुनाव भी कर लिया।

देशभक्ति के क्या मायने होते हैं और गुलामी के क्या नतीजे भोगने पड़ते हैं, यह भी बखूबी समझा और देखा।

यह भी देखा कि स्वतंत्रता का क्या सुख होता है और स्वराज्य की कल्पना कैसी हो सकती है। यह सब न तो इंदिरा को किताबों ने सिखाया था, न ही उन्होंने किसी के उपदेश से सीखा। इस सबको सीखने के लिए किसी स्कूल या विद्यालय का मुंह देखने की जरूरत नहीं पड़ती बल्कि यह सब सीखा जाता है, वातावरण से। और इंदिरा गांधी का वातावरण था, जेल, निहत्थे लोगों के सीने से बहता लहू, आजादी का हक माँगते भारतवासियों की कराहें– विदेश के हर आकर्षण और शानो शौकत को ठोकर मार देने का त्याग सूट, टाइयां, रेशमी चादरें, विदेशी कालीन। इसके साथ ही एक ज्वाला उनके मन में भर गई। यह ज्वाला थी देश को पिता की ही तरह आजादी की दूरदर्शी निगाह से देखने की।

जवाहरलालजी अपनी बिटिया को जेल से सूझ-बूझ भरे पत्र लिखा करते थे। ये पत्र बेटी के लिए एक तरह का पत्राचार-पाठ्यक्रम बनते गए। इस पाठ्यक्रम ने नन्हीं इंदिरा, फिर किशोर इंदिरा और युवती इंदिरा को ऐसे साँचे में ढाल दिया, जिसके हर नख-शिख, मोड़ पर सिर्फ देशभक्ति लिखी थी, ''इंदु'' संबोधित किया करते थे वह। कभी लिखते .... प्यारी बेटी तुम जल्दी-जल्दी बड़ी हो जाओ। पढ़ना-लिखना सीख लो और चर्खा रोज काता करो। वह कभी-कभी बुने हुए सूत का एक धागा भी चिट्ठी के साथ लिफाफे में रखकर इंदिरा को भेज दिया करते थे। इस तरह जो इंदिरा तैयार हो रही थीं – वह बिल्कुल ही नयी इंदिरा थीं। यह इंदिरा गांधी का वह भविष्य था जो उन्हें बाद में उनकी अपनी शक्ति बहुमुखी प्रतिभा तथा साहस के कारण विश्व नेता के रूप में स्थापित कर सका।

इंदिरा को उनकी 13 वीं सालगिरह (19 नवम्बर, 1930)

को जवाहरलाल जी का जेल से लिखा एक पत्र मिला। लोगों के अनुसार यही वह पत्र है जो शायद बाद में जवाहरलाल जी की विश्वप्रसिद्ध पुस्तक ''विश्व इतिहास की रूपरेखा'' का प्रारंभ बन गया। इस पत्र में नेहरू जी ने बेटी को समाजवाद, देश-दर्शन, संस्कृति और व्यवस्था के साथ-साथ विधान भी समझाया था।

जवाहरलाल जी द्वारा जेल से लिखे गए पत्रों ने ही इंदिरा जी को असली शिक्षा दी। इस शिक्षा ने उनके उस तेजस्वी रूप को निखारा-संवारा, जिसकी प्रशंसा करते आज भी असंख्य लोग दुनिया के कोने-कोने में इंदिरा को शान्ति दूत के रूप में याद करते हैं। पिता के पत्र पुत्री के नाम कुल 156 हो गए थे उस समय तक। स्वयं इंदिरा जी ने उन पत्रों को लेकर स्वीकार किया है – ''वे खत ही थे जो मुझे पापू (जवाहरलाल जी को वह पापू ही कहा करती थीं) से दूर रखकर भी पापू के हमेशा करीब बनाये रखते थे... उन खतों में मुझे पिता की मुलायम अंगुलियों का दुलार महसूस होता था और उन्हीं शब्दों में मैं उनके अनंत स्नेह की कल्पना कर सकती थी ...''

इंदिरा जी ने जीवन व्यवहार, कर्म और देशभक्ति, संस्कृति को लेकर जो कुछ अपने विचार बनाए थे, उनकी बहुत कुछ जमीन उन्हें पिता के पत्रों में बने संस्कारों से ही मिली थी। मशहूर लेखक और फिल्म निर्देशक ख्वाज़ा अहमद अब्बास उनके परिवार के बहुत करीब रहे हैं। वे अक्सर जवाहरलाल जी से भी मिला करते थे। उन्होंने इंदिरा गांधी को छुटपन से देखा था। एक बार उन्होंने इंदिरा से पूछा कि उनके जीवन पर अलग-अलग पत्रों पर किसका प्रभाव पड़ा तो इंदिरा ने कहा – ''यह बाँटना तो कठिन होगा, कैसे कहा जा सकता है कि किस पर दादा का प्रभाव पड़ा, किसमें अपने पिता का, किसमें महात्मा गांधी का और किसमें रवींद्रनाथ टैगोर का। जीवन के बरसों में

जब विकास हो रहा था, तब मुझ पर इनमें से हर एक का प्रभाव पड़ा। हाँ, प्रकृति से, खासतौर से पहाड़ों से प्रेम करने और किताबें पढ़ने का शौक अपने पिता से मिला। साथ ही शारीरिक, बौद्धिक दोनों ही क्षेत्रों में साहस से काम लेना उन्होंने सिखाया। जब मैं शांति निकेतन में पढ़ती थी, तो गुरूदेव ने मेरे लिए अद्भुत सौंदर्य और कला के द्वार खोल दिए।

इंदिरा के बचपन को विभिन्न शालाओं में बाँटा जा सकता है। इसमें से एक शाला है – उनका निजी अध्ययन। इसमें आती हैं विश्व-साहित्य की महान पुस्तकें। उन्होंने केवल प्रथम 15 वर्ष की आयु तक जिन लेखकों की रचनाओं का अध्ययन कर लिया था, उनमें से कुछ के नाम हैं – बर्नार्ड शॉ, टाल्सटाय, प्रेमचंद, रवींद्र, शेक्सपीयर, गेटे आदि ... यही वह काल था, जब कमला जी की बीमारी का संभवतः प्रारंभ हो चुका था। उनके फेफड़े खराब हो गए थे। संघर्ष के दौर में उस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। कुछ कमला जी ने भी जानबूझ कर अपनी बीमारी को केवल इस कारण दबाए रखा था कि उनके परिवार, विशेषकर पति जवाहरलाल जी की आंदोलन में बढ़ती नेतृत्व शक्ति को क्षति न पहुँचे। वह देश की जरूरत थी। हजारों, लाखों नर-नारियों के जीवन की जरूरत थी।

भारतीय डाक्टरों ने बहुत जाँचा-परखा, आखिर में वे हार कर जवाब दे बैठे कि अब कुछ भी नहीं किया जा सकता है। उनका इलाज केवल विदेश में ही संभव था। इस तरह श्रीमती कमला नेहरू को लेकर जवाहरलाल जी स्विटजरलैंड गये। इस दौरान नन्हीं इंदु अपने पिता और माता से लगातार दूर रहीं। यही एकांत था, जिसने शायद इंदिरा जी को एकांतप्रिय बनाया, अकेलेपन की तकलीफ से परिचित कराया और उनकी "एकला चलो रे" शक्ति को भी जागृत किया।

सन् 1936 के फरवरी माह की बात है। श्रीमती कमला नेहरू का स्वर्गवास हो गया। इंदिरा जी पर यह एक वज्रपात हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन के कारण उन्हें माता का बहुत अधिक प्यार नहीं मिल पाया था। अब वह सदा के लिए उनसे अलग हो चुकी थीं। पर इंदिरा ने इस विछोह को भी अपनी दृढ़ता से झेला। जीवन में समझ और अध्ययन से उन्होंने जो कुछ सीखा समझा था, उसके कारण वह इसे सह गईं। अब उन्होंने पूरी तरह सक्रिय होकर राजनीति के मैदान में उतर आने का निश्चय किया। यह निश्चय धीरे-धीरे कार्यान्वित होना प्रारंभ हुआ।

प्रसिद्ध लेखक एडवर्ड जे. थाम्पसन ने इंदिरा के शिक्षाध्ययन के दौरान उनके व्यक्तित्व को लेकर उनके पिता पंडित जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र सन् 1939 में लिखा था। इंग्लैंड से लिखे गए इस पत्र में उन्होंने कहा – ''मैं इंदु से मिला। अच्छी-भली लग रही थी। अच्छी भली है भी। दुबली जरूर है, चाहें तो निस्सन्देह उसे सुकुमार भी कह सकते हैं। रहने-सहने में उसे काफी सावधानी बरतनी होगी। किन्तु अंदर से बहुत सबल है। किशोरावस्था के ये संकटपूर्ण दिन जब बीत जाएंगे, तब उसकी शक्ति निखर आएगी।

और वह शक्ति निखरती चली गई थी इंदिरा में। समय और परिस्थितियों के साथ जब उन्होंने युवावस्था की देहली पर पाँव रखा तो वह एक ऐसी शांत, किन्तु समुद्र-सी गंभीर थीं, जिनके गुणों की गहराई को आसानी से कोई नहीं नाप सकता था। उनमें निर्णय शक्ति इस तरह कूट-कूट कर भर गई थी कि वह जो निश्चय कर लेतीं, उन्हें उससे डिगाना कठिन ही नहीं, असंभव होता था।

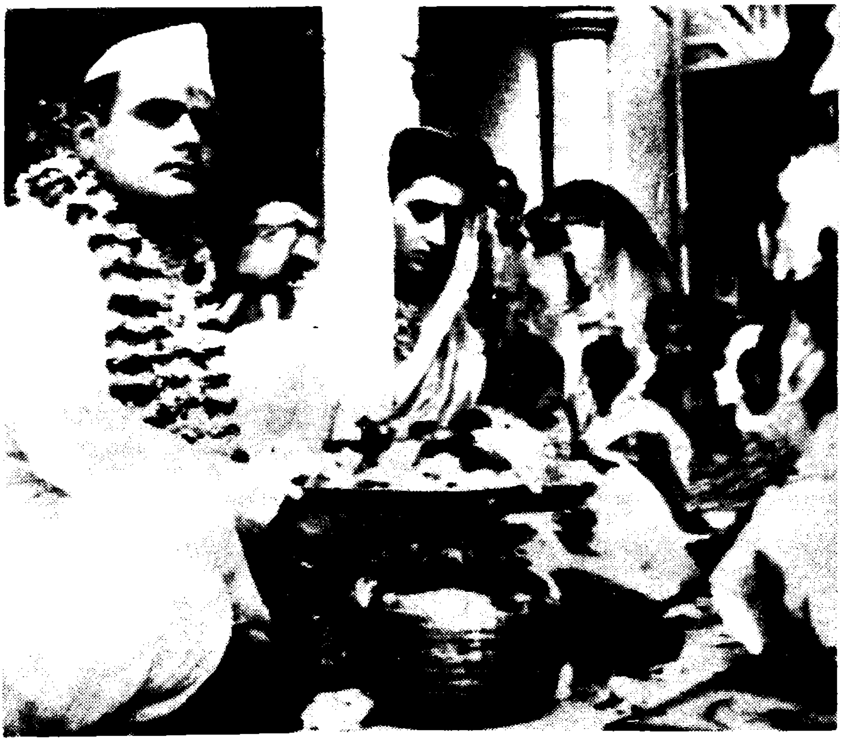
इसी निर्णय शक्ति से उन्होंने जीवन के एक महत्त्वपूर्ण कदम का निर्णय लिया था। यह निर्णय था अपने स्वयं के विवाह का। उन्होंने कांग्रेस का कार्य करते-करते ही अपने युवा साथी

फिरोज़ गांधी के साथ विवाह करने का निश्चय किया। और फिर यह निर्णय परिवार वालों को बतलाया।

परिवार वाले एकाएक सहमत नहीं हुए। दस मीनमेख निकाले जाने लगे। किसी की राय कुछ थी, किसी की कुछ। पर इंदिरा जी थीं कि निर्णय ले लिया सो ले लिया।

बहुतों ने अपनी तरह से इंदिरा जी को सोचने की प्रेरणा दी, सलाहें दीं, सुझाव दिए, पर इंदिरा ने जवाब दिया – यही मेरा फैसला है ... अब आप लोग जो चाहें,विचारें।

जीत इंदिरा गांधी की हुई।



विवाह

1940-41 में इंदिरा और फिरोज़ का विवाह हो गया। स्वतंत्रता संघर्ष उन दिनों अपने पूरे उभार पर आ चुका था।

''आनंद भवन'' तो कांग्रेस के सेनानियों का मुसाफिरखाना ही बन गया था। दूसरे विश्वयुद्ध की आग ने सारी दुनिया को जकड़ रखा था। भारत भी उसकी आँच से अछूता नहीं बचा। इंदिरा दिन-रात इस संग्राम में जुटी रहीं। विवाह तो हो चुका था, किंतु इंदिरा के जीवन में न रस रहा था, न आराम। अपनी शांति को जिसने सारे देश के सुख-दुख से जोड़ रखा हो, वह शांत रहता भी कैसे? उनकी वैवाहिक जिंदगी इस तरह चल रही थी कि इंदिरा गांधी जब घर पर सेवारत होतीं तब फिरोज़ गांधी जेल में होते। इंदिरा जब कहीं बाहर दौरों पर निकल पड़तीं, तब फिरोज़ जेल से बाहर आते और स्वतंत्रता के काम में जुट जाया करते।

यही सिलसिला चल रहा था। लगता था ईश्वर सोने को पूरी तरह आग पर तपा रहा है। यह तपन का सिलसिला कब तक चलेगा, कोई नहीं जानता था, पर इतना सब जानते थे कि सोने को तपने से भय नहीं होता।

इस तपन को भी सहमती झेलती रही थीं इंदिरा, न चेहरे पर कोई शिकन थी, न माथे पर बल।

संघर्ष यात्रा निरंतर चलती रही और उसी की गति से इंदिरा चलती रहीं। आंधी, तूफान की तरह। सन् 1942 के आंदोलन तक इंदिरा गांधी राजनीति में सक्रिय नेत्री के नाते बहुत कुछ उभरने लगी थीं। उनकी जेलयात्राएँ भी प्रारंभ हुईं। इंदिरा जी ने ''बीते दिनों की याद'' शीर्षक अपने एक लेख में उस काल का हल्का-सा वर्णन किया है। इस वर्णन से यह भली भांति अनुमान हो जाता है कि 42 के आंदोलन को उन्होंने किस सक्रियता और मानसिक प्रभाव के साथ लिया और भोगा। वे लिखती हैं ... "9 अगस्त 1942 को बड़े तड़के से ही हमारे राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी से ''भारत छोड़ो'' आंदोलन की शुरूआत हुई थी। इन्हीं दिनों एक झंडारोहण समारोह में मुझे पहली बार अश्रुगैस के हमले का अनुभव हुआ था। मेरे पति ने हुकूमत की नजरों से

दूर ही रहने का निश्चय किया था। जिससे वे प्रचार के काम को बिना रोकटोक कर सकें। उन्होंने मूछें बढ़ा ली थीं और खाकी पोशाक पहन ली थी। उनके बदन का रंग बहुत साफ और चेहरा गुलाबी होने से पुलिस के लोग उन्हें ऐंग्लो इंडियन सैनिक समझ कर छोड़ देते थे। बंबई से इलाहाबाद के सफर में वे पहले ही एक छोटे स्टेशन पर उतर गये। उन्होंने सोचा कि इस बदली वेशभूषा में भी लोग उन्हें पहचान लेंगे। क्योंकि इलाहाबाद के बहुत लोग उन्हें जानते थे। लेकिन उस समय सवारी का कोई इंतजाम नहीं था। इसलिए ऐसे ट्रक में सवार होकर इलाहाबाद आए, जिसमें ब्रिटिश व एंग्लो इंडियन सैनिक भरे पड़े थे। जब उतरने का वक्त आया तो इन सैनिकों ने उन्हें उतरने से मना किया था कि कहीं किसी लुच्चे भारतीय ने देख लिया तो अकेला और निहत्था समझकर बोटी-बोटी काट देगा।"

स्वराज भवन में सैनिकों का कड़ा पहरा था। पास के "आनंद भवन में भी हमें बंदूकों की कतारें दिखाई पड़ती थीं। वे सामने बगीचे की दीवार से आनंद भवन की ओर लगी हुई थीं। हमारे नौकर-चाकर, जो अधिकांश देहात के थे, यह सब देखकर डर गए थे। जब कभी वे उधर से यानी दीवार की ओर से किसी काम को जाते, तो उन्हें सैनिकों की कर्कश आवाज सुनाई देती... "हाल्ट ... कौन उधर जा रहा है"। बेचारे देहातियों से कोई जवाब न देते बनता।

लालबहादुर शास्त्री जी की गिरफ्तारी का वारंट जारी हो चुका था। यह सोचकर कि आनंद भवन में इस समय रहने की हिम्मत किसी की नहीं होगी, और न कोई ऐसा सोच ही सकेगा। शास्त्री जी भेष बदलकर आनंद भवन में हम लोगों के साथ ही रहते थे, और तब तक रहे, जब तक कि आंदोलन चलाने का पूरा प्रबंध नहीं कर लिया। जब तक अंधेरा न हो जाता शास्त्री जी अपने कमरे से बाहर नहीं निकलते थे। उनके लिए चोरी-छिपे

भोजन पहुँचा दिया जाता था। हम लोगों ने बहाना बनाया था कि एक रिश्तेदार बहुत दिनों से बीमार हैं ताकि इस बात का बाहर पता न चल सके। यह हालत बहुत दिनों तक चलने वाली नहीं थी। इसके अलावा हर समय तलाशी का खतरा बना रहता था। इसलिए शास्त्री जी को वहाँ से निकलना पड़ा। जल्दी ही वे गिरफ्तार भी कर लिए गए। हम लोग एक दूसरे से दूर छिटक गए थे। कार्यकर्ताओं के लिए एक जगह जमा होना असंभव हो चुका था।

जो लोग लुक-छिप कर काम कर रहे थे, उन तक पैसे व राजनैतिक साहित्य पहुँचाने में मेरे पति एक कड़ी का काम कर रहे थे। हम लोग गहरी रात में, ऐसे लोगों के यहाँ कुछ समय के लिए मिलते जो दोस्त तो थे, किन्तु राजनीति से दूर ही रहते थे।

इसके बाद ही यह सूचना मिली कि मुझे भी गिरफ्तार किया जाएगा। अब तक मैं यही कोशिश करती रही थी कि जहाँ तक संभव हो, इसी प्रकार काम करती रहूं, मैं इतनी आसानी से जेल जाना भी नहीं चाहती थी ... इसलिए मैंने जल्दी से कुछ कपड़े और किताबें साथ लीं, और दूसरी जगह रहने चली गई। सायंकाल 5 बजे एक सार्वजनिक सभा है, यह खबर एक कान से दूसरे कान तक पहुँचते-पहुँचते सब जगह फैल गई। समूचे शहर में सैनिकों का कड़ा इंतजाम हो गया। लेकिन वे यह पता नहीं लगा सके कि सभा कहाँ होगी? (17 सितंबर 1942 को) मैं निश्चित समय पर निश्चित स्थान पर पहुँच गई। चारों ओर से लोगों की कतारें आ आकर जमा हो गईं। सिनेमाघरों, दुकानों, और पास के मकानों में लोग पहले से ही जमा हो रहे थे। ऐसे वक्त पर भी सब इकट्ठा हो गए। मेरा भाषण 10 मिनट भी नहीं चल पाया था कि ब्रिटिश सैनिकों से भरे ट्रक पहुँचे गए। और हम लोगों को चारों ओर से घेर लिया गया। मेरे पति इस सभा में अपने को अलग ही रखना चाहते थे इसलिए सामने के मकान की एक

खिड़की से हम लोगों की सभा पर नज़र रखे हुए थे। लेकिन जब मुझसे केवल एक गज की दूरी पर उन्होंने तनी हुई बंदूक की नली देखी तो वे चिल्लाए और भावावेश में आकर अपने को संभाल न सके वे दौड़कर वहाँ पहुँचे और चिल्लाकर सार्जेंट से कहा कि या तो शूट करो या बंदूक हटा लो... इधर सार्जेंट ने मुझे कैदखाने की गाड़ी में ले चलने के लिए मेरी बांह पकड़ने की गलती कर दी ... बस, फिर क्या था। सभा की भीड़ भी मेरी तरफ बढ़ी और कांग्रेस की स्वयंसेविकाओं ने मेरी दूसरी बांह पकड़ ली। दोनों ओर की खींचातानी। मुझे ऐसा लगने लगा जैसे कि मेरे दो टुकड़े हो जाएंगे। लेकिन हम सब लोग बच गए। पुलिस ने गोली नहीं चलाई। अलबत्ता रायफल के कुन्दों की मार से कई लोग घायल हुए। हम लोग बड़ी संख्या में गिरफ्तार कर लिए गए। इनमें मेरे पति, व बहुत से पुरुष और महिलाएँ शामिल थीं, लेकिन जेल तक की यात्रा भी अजीब ही रही। मेरी बातों से पुलिस वाले इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी पगड़ियाँ मेरे पैरों पर रखकर क्षमा माँगी और रोते हुए कहा – "हम क्या करें हमारी नौकरी ही ऐसी है कि यह सब करना पड़ता है। ..."

यह एक मुँहबोली तस्वीर है, जो जाहिर करती है कि इंदिरा युवावस्था से ही किस साहस और बुलंदी के साथ स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई में कूद पड़ी थी ... और इस मुँहबोली घटना से यह भी साबित हो जाता है कि लोग उन्हें कितना स्नेह और सम्मान उसी समय से देने लगे थे, जबकि वह नवयुवती ही थीं।

उसके बाद एक सिलसिला बन गया, इंदिरा के संघर्षमय जीवन का। उस जीवन का जो देश के हजारों हजार लोग, हर उमर के लोग झेल रहे थे। अहिंसा और दमन का अजीबो-गरीब संघर्ष था वह।

ऐसी ही बहुत-सी घटनाएँ हैं जो कई लोगों से सुनने को मिलती हैं, पर यहां वही घटनाएँ देना उपयुक्त है जो उनकी स्वयं

की लेखनी, अनुभव या भाषण में आई हैं, इन घटनाओं के प्रकाश में इंदिरा जी का अनुभव भी देखा जा सकता है, ये ही होंगे इंदिरा जी के जीवन के अनछुए प्रसंग।

इंदिरा जी और फिरोज़ पहली-पहली बार एक साथ जेल गए,व्यक्तित्व को नया निखार मिला। आंदोलन ने संभवतः पहली बार उस इंदिरा की परीक्षा ली, जिसे देश ने उनके प्रधानमंत्री रहने के दौरान हजारों हीं बार देखा होगा परखा होगा।...

जेल के अपने पहले अनुभव को लेकर उन्होंने स्वंय लिखा है – बाहर से देखने व सुनने तथा वास्तविक अनुभव में जमीन आसमान का फर्क होता है। जिसे थोड़े दिनों के लिए भी जेल जाने का अनुभव नहीं है, उसे शरीर व मन पर पड़ने वाले गहरे प्रभाव का पता कैसे चल सकता है? जैसा कि प्रख्यात लेखक आस्कर वाइल्ड ने लिखा है – "जेल का एक-एक दिन एक-एक वर्ष के बराबर होता है। जेल का एक वर्ष बहुत लम्बा समय है। जेल में निरंतर तिरस्कार और जानबूझकर अपमानित किए जाने वाले व्यवहार से सारे दिन एक समान ही बीतते हैं"... यह सब लिखते हुए इंदिरा गांधी ने अपने जेल अनुभव को लेकर अपने संस्मरणों के साथ-साथ अनेक विद्वानों-लेखकों के विचारों का हवाला दिया है। एक सबसे महत्त्वपूर्ण टिप्पणी है :

"... चलने-फिरने की जगह, दीवारें, यहाँ तक कि हमारे आसपास की हर चीज बड़ी भद्दी दिखाई देती थी। कपड़े भी जेल के ही धुले होते थे और भोजन में तो जैसे कोई स्वाद ही नहीं था। बाहर से बंद लेकिन खुले दरवाजों व सीखचों में लू व धूल के गुबार उड़ा करते थे। बरसात में पानी की बौछारें और जाड़े में कड़ाके की ठंड सहन करना, कैदियों के लिए आम बात थी। दूसरों को महीने में एक या दो बार पत्र लिखने व स्वजनों से भेंट की अनुमति दी जाती थी, लेकिन मैं इन सुविधाओं से भी वंचित थी।

मेरे पति भी उसी जेल में थे। बहुत कोशिशों के बाद थोड़ी देर की मुलाकात की अनुमति मिलती थी। लेकिन बहुत जल्दी ही उन्हें दूसरे शहर की जेल में भेज दिया गया। तब एक छोटे से बच्चे की देखभाल का काम मैंने सम्हाल लिया। उसकी माँ को मैं पढ़ाया करती थी जिससे जेल से छूटने पर वह कोई काम करने लायक हो जाए ..." यह अहम बात थी इंदिरा के व्यक्तित्व की । सुख हो या दुख — हर क्षण, हर पल वह अपने को व्यस्त रखती थीं। साथ ही दूसरों के दुख दर्द से द्रवित भी रहती थीं। शायद तपन की इस लगातार जलती रहने वाली आग ने ही उन्हें वह शक्ति प्रदान की जिसके तहत वह अनेक काम एक साथ कर सकीं — पूरे मन के साथ। संघर्ष-यात्रा के इस दौर ने कोमलांगी इंदिरा को क्रमशः वज्र की तरह कठोर बनाया। उनमें साहस और शक्ति की वह चेतना निरंतर प्रज्ज्वलित होती चली गई, जिसे लेकर उन्होंने अपने प्रशासनिक और नेतृत्व गुणों को अधिकाधिक विकसित किया .. उस सीमा तक पहुँचाया कि वह विश्व की पहली महिला नेत्री के रूप में स्वीकार की गईं।

साहस और दृढ़ता के बीज पिता ने पुत्री के नाम लिखे गए पत्रों से ही डाल दिये थे। वातावरण और आंदोलन की उग्रता ने उन बीजों को अंकुर बनाया और फिर स्वयं इंदिरा जी के अनुभवों ने उन्हें वृक्ष का रूप दिया ... यह वृक्ष धीमे-धीमे किस तरह वट वृक्ष बनता चला गया, इसकी मिसाल उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

"... एक दिन हम लोग जलकर मरने से बाल-बाल बच गए। युद्ध का जमाना था। युद्ध छावनी में ब्रिटिश सैनिकों के अलावा अमरीकी और कनाडियन भी थे। एक कनाडियन विमान चालक की सुंदर पुत्री से जान-पहचान हो गई थी। जैसा कि चालक की आदत थी, वह अपने विमान को खूब नीचे ले आता और सुपरिन्टेंडेंट के मकान की छत के ऊपर से निकलता था। एक दिन विमान का एक पंखा टेलीफोन के तार से टकरा गया

और विमान में तुरंत आग लग गई। हम लोगों ने बड़ी तेजी से इस जलते विमान को अपनी ओर आते देखा लेकिन सौभाग्य से जेल की दीवार से रगड़ता हुआ विमान निकल गया और थोड़ी दूर पर एक अधबने बंगले से जा टकराया ..."

और फिर वही शून्य, वही अकेलापन और अपनी निःसंगता ... "अंधेरे रास्ते से अचानक बाहर निकलने के समान एक दिन मेरी रिहाई का वक्त आ गया। अपने सामने हलचल से भरे जीवन को देखकर मैं दंग रह गई। जीवन की रंगीनियाँ, खुशमिजाजी, सामने फैली पड़ी थीं। मन पुलकित हो उठा। विचारों की जैसे बाढ़ आ गई। लेकिन ऐसे क्षण तो अब बार-बार आने थे। उनको लेकर बैठा नहीं जा सकता था। इंदिरा जी को कटु अनुभवों के बाद जीवन बदस्तूर करने में फिर बहुत अधिक समय नहीं लगा।

□□

सन् 1943 में राजीव गांधी का जन्म हुआ। वह ऐसा समय था जबकि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें लगभग उखड़ चुकी थीं और वह बूढ़े पेड़ की तरह झुकता-झुकता, करीब-करीब टूटने को हो गया था ... इसके बावजूद दमन और बर्बरता का दौर उसी निर्ममता के साथ चल रहा था, बल्कि पहले से कहीं ज्यादा तेज हो गया था। यह ठीक कुछ ऐसे ही था जैसे गिरने से पहले पेड़ चरमरा रहा हो ...

उस समय तक इंदिरा अनेक बार आंदोलन का नेतृत्व ही नहीं कर चुकी थीं, बल्कि संघर्ष की ज्वाला में पूरी तरह तप चुकी थीं। युवा वर्ग में उनकी लोकप्रियता भी निरंतर बढ़ती जा रही थी। इसी के साथ-साथ बढ़ता जा रहा था वह व्यक्तित्व जो भविष्य के आजाद भारत को देखता था ... जिसकी छाया तले सुख समृद्धि के कल्प वृक्ष की साधना करनी थी उन्हें।

1943 में ही इंदिरा जी ने अपने एक मित्र को लिखा ...

''कहते हैं कि इन्सान साँस टूटने से पहले बड़ी ताकत से किसी को देखता भी है, बोलता भी है, और अपने आप पर काबू भी करता है ... पर साँस उसे ज्यादा वक्त नहीं देती। ब्रिटिश साम्राज्य का हमारे देश में इस वक्त यही हाल है ... वह दम तोड़ने लगा है और उसकी ओर से निहत्थे हिन्दुस्तानी लोगों पर हो रहा जुल्म महज उसकी आखिरी धड़कन की आवाज है।''

विवाह के बाद इंदिरा और फिरोज़ निरंतर स्वतंत्रता संघर्ष से जुड़े रहे थे। बाद में फिरोज़ गांधी को ''नेशनल हेराल्ड'' को संभालने की जिम्मेदारी सौंपी गई। इंदिरा जी राजीव को साथ लेकर उनके साथ- साथ लखनऊ आईं। वहीं बाद में संजय का जन्म भी हुआ। यह वह समय था। जब अंग्रेजों के दमन से ''नेशनल हेराल्ड'' को गुजरना पड़ रहा था। प्रसिद्ध लेखक ख्वाज़ा अहमद अब्बास ने उन दिनों की चर्चा करते हुए लिखा है – ''इंदिरा जी ने अपनी छोटी-सी आमदनी में एक छोटा-सा घर, बहुत सुसज्जित रूप से सजाया था। यह बात 1946 की है।

उन दिनों हिन्दू-मुस्लिमों के बीच, कभी अंग्रेजों द्वारा ही डाली गई दरार ने खाई का रूप ले लिया था। इस घिनौनी राजनीति के खेल में भारत के हिन्दू-मुस्लिम सभी नागरिकों को जलना पड़ रहा था... यह दरार उस समय अचानक दावानल में बदल गई, जबकि स्वतंत्रता का समय करीब आया। इस समय कांग्रेस के सभी वृद्ध-युवा नेता इस दावानल को अपने जीवन की आहुति देकर भी बुझाने के लिए एकजुट हो रहे थे। इंदिरा जी भी इसी प्रयत्न में जुड़ी हुई थीं। यह जुड़ाव कैसा था? इस जुड़ाव का जिक्र करते हुए नेहरू परिवार के बहुत करीबी मित्र रहे एक श्री मोहम्मद यूनुस परवेज बताते हैं – ''एक बार इलाहाबाद में मुस्लिम लीग के बड़े हुजूम ने हमारे लोगों को रोका और खूब जमकर पीटा। हमारी कार तक तोड़फोड़ डाली। परंतु अहिंसा पर डटे पठानों ने उस पर बदले में हाथ तक नहीं उठाये। वे सब

बुरी तरह जख्मी हो गए थे। ... तब स्थानीय लोगों ने सबको उठाकर अस्पताल तक पहुँचाया। मैं भी उनके साथ-साथ था।

आधी रात गए ''आनंद भवन'' लौटे तो जवाहरलाल जी और इंदिरा जी इंतजार में बैठे थे। बहुत परेशान से थे। क्योंकि उन्हें पता चल चुका था कि हमारे साथ कैसा हादसा हुआ है।

''तुम्हें चोट तो नहीं आई। ''जवाहरलाल जी ने पूछा।

''नहीं'' मैंने जवाब दिया। कहते हुए मैंने अपने हाथों से अपने दुखते सिर को दबाया तो मेरे दोनों हाथों की अंगुलियों से खून की बूदें टपकने लगीं।

जवाहरलाल जी हैरत से देख रहे थे मेरे सिर के बालों में उलझे, टूटे शीशे की किरचें हैं। मेरे दोनों हाथों की अंगुलियाँ कट गईं थीं। उनसे टपकता खून अब फर्श पर भी बिखरने लगा था।

''तभी इंदिरा जी सामने आईं बोलीं – ''आई एम प्राउड आफ यू।''

इंदिरा गांधी के साहसी व्यक्तित्व की एक झलक ... दूसरी झलक में इंदिरा के भीतर बैठा वह मातृत्व देखा जा सकता है, जो मोहम्मद यूनुस के ही संस्मरणों में व्यक्त हुआ है।

यूनुस साहब की एक और याद है ...

''एक तूफानी बदतमीजी देश भर में फैली थी और दुख तो दुख यह देखकर शर्म आती थी कि देशवासियों ने जो इतनी जानें दीं, जो कुर्बानियाँ दीं, क्या इसी दिन के लिए कि भाई-भाई के खून का प्यासा हो जाए?''

''यह सब देखकर जवाहरलाल जी बहुत दुखी रहा करते थे। उनके घर में बीसियों शरणार्थी पनाह ले रहे थे। इंदिरा जी उनकी देखभाल में व्यस्त रहतीं ... सार्वजनिक रूप से जुड़ाव के इस दौर ने और इससे जुड़े कटु अनुभवों ने इंदिरा को विचित्र गम्भीर्य से मंडित कर दिया था। प्रतिदिन समस्याओं से जूझते-बूझते और उनका हल निकालते वे एकांतप्रिय हो गईं।

यह सोच उनके स्वभाव का एक अंग बन गया। सारे सुख-साधनों के होते हुए भी उनका मन, और शरीर सदा ही संघर्ष के ऐसे बहुमुखी चेहरों से जूझता रहा, जिनका सामना एक सामान्य आदमी को भी होता है पर विशिष्ट लोगों में वह असामान्य ढंग से समेटा जाता है।

वह अपने पति और परिवार के लिए सदैव कुछ समय निकालने की कोशिश किया करती थीं, किन्तु होता यह था कि कभी भी संपूर्णतः एक जगह अपने को जोड़े रखने में समर्थ नहीं हो पाती थीं। कारण था उनका वह मानस और संस्कार जो बचपन से ही देश के प्रति पूर्णतः समर्पित हो चुका था। संभवतः यही कारण था कि जवाहरलाल जी के घर को भी वह देखतीं, अपना घर भी संभालतीं। जवाहरलाल जी के यहां आने वाले विदेशी मेहमानों का ध्यान रखना, घर को सहेजना भी उनकी जिम्मेदारी थी, अपने बच्चों, पति-परिवार को सहेजे रहना भी उनकी जिम्मेदारी थी। वे ये दोनों ही जिम्मेदारियों को निरंतर निबाहती रहतीं।

फिर हुआ हिन्दुस्तान पाकिस्तान का बँटवारा ... यह एक अजीबोगरीब बंटवारा था। एक ही घर के दो टुकड़े कर दिए गए। कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं ने बहुत कोशिश की, कि ऐसा न हो। किन्तु अंग्रेजी राजनीति सफल हुई। भाई-भाई टूट गए।...

इस टूटन ने आपसी नफरत और खून-खराबे का ऐसा दौर फैलाया, जिसने सारे देश की आत्मा को झकझोर कर रख दिया। लगता था कि इंसान, इंसान का जानवर से बदतर दुश्मन हो गया है। इस दुश्मनी के दौर को इंदिरा की युवा आंखों ने आँसू पीती बेबसी के साथ देखा और भोगा। इसी दौरान हुए दंगों ने शायद उन्हें पहली बार हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान की जड़ों तक फैले हुए सम्प्रदायवाद की झलक दिखाई। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक एकात्मकता के भाव की

कल्पना यहीं से की, जो बाद में उनकी सारी नीतियों के रूप में प्रधानमंत्रित्व काल के दौरान देखने को मिली।

यह वह समय था, जब लगातार स्वतंत्रता संघर्ष ने बहुतेक नेताओं को तोड़ दिया था। बहुत से बूढ़े हो चले थे। बहुतों का हाल यह था कि वे चाहकर भी अपने शरीर के कारण उतने समर्थ नहीं रह गए थे, जितनी समय की आवश्यकता थी। इसी काल में एक नई पीढ़ी तैयार होती जा रही थी .... यह पीढ़ी इंदिरा गांधी की तरह सोचने वालों की थी और नेतृत्व के रूप में उनकी निगाहें जाने-अनजाने ही सही, पर इंदिरा गांधी को अपने बीच देख रही थीं।

ऐसे समय में इंदिरा जी निरंतर जवाहरलाल जी के साथ रहकर हर राजनीतिक स्थिति का जायजा लेती रहीं। दूसरों की अपेक्षा उन्हें अनुभव भी अधिक था। दूसरों से कहीं ज्यादा प्रशासन और राजकीय व्यवहार और नीतियों को पहचानती भी थीं वह।

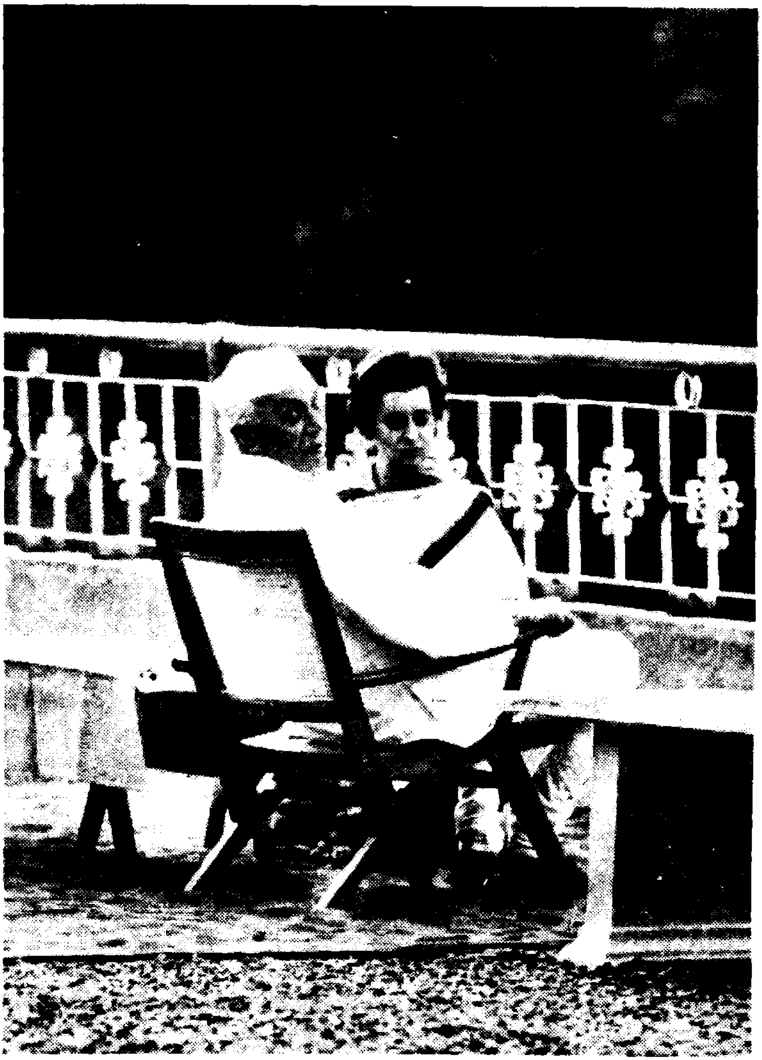
भारत आजाद हुआ ...

□□

जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री बने। इंदिरा जी उनके हर काम में सहयोगी रहीं। शायद इंदिरा को जवाहरलाल जी इसलिए साथ रखा करते थे, ताकि चाटुकार और खुशामदी लोगों की तह तक पहुँचकर वे उनसे पिता को आगाह कर सकें। बहुत हद तक यह सही होगा, पर इतना सच अवश्य है कि इंदिरा जी के साथ रहने के कारण ही जवाहरलाल जी के आधे काम सुचारू रूप से निबट जाया करते थे। बहुत बार, बहुत सी समस्याओं के समय इंदिरा गांधी उनके सामने किसी हल की तरह मौजूद रहा करती थीं। ऐसे मामलों की कमी नहीं है, जब इंदिरा जी की सलाह के आधार पर ही नेहरू जी ने बहुत से निर्णय लिए।

इसके साथ-साथ दिन-रात कार्यरत रहने वाले अपने वृद्ध

पिता को इंदिरा जी उनके रहन-सहन, स्वास्थ्य, साजसंभाल की दृष्टि से भी सावधान रखा करतीं। वह उनके खान-पान, सोने-जागने, और भेंटों आदि का समय निर्धारित करने में भी



पिता जवाहर लाल के साथ

सक्रिय व्यवस्था बनाए रखतीं। यह अपने आप में ही बहुत काम था। जवाहरलाल जी थाती थे देश की। उन्हें संभाल कर रखना एक बड़ा काम था। नेहरू जी के जग-प्रसिद्ध क्रोध के बीच ऐसे तनाव के क्षणों को नकार देना इंदिरा जी के ही बस की बात थी। □□

प्रधानमंत्री भवन (तीनमूर्ति भवन) में पिता के साथ रहते समय इंदिरा गांधी अपना बहुत-सा समय अध्ययन में व्यतीत किया करती थीं। जब-जब उन्हें थोड़ा-सा भी समय मिलता वे लायब्रेरी में धर्म, दर्शन, इतिहास, मनोविज्ञान आदि की पुस्तकों का अध्ययन करती हुई मिलतीं।

तीनमूर्ति भवन में जिन कर्मचारियों ने उन्हें देखा है, उनका कहना है कि इंदिरा जी उसी समय से कम बोलने, शांत रहने और अक्सर एकांत में विचार करते रहने की आदी होती जा रही थीं। यही नहीं, वह छोटी से छोटी बात पर नजर रखतीं। तनिक सी लापरवाही का कारण खोजने में लग जाया करतीं। यहाँ तक कि कठोरतापूर्वक डाँट-डपट कर दिया करतीं, किन्तु अगर उन्हें मालूम हो जाए कि किसी कर्मचारी को किसी कारण दुख और मानसिक क्लेश हो रहा है या वह किसी पारिवारिक परेशानी में घिरा हुआ है तो निःसंकोच उसके यहाँ जा पहुँचतीं। उसके सुख-दुख में काम आतीं। यथाशक्ति उसे सहायता भी किया करतीं।

श्रीमती इंदिरा गांधी के उस समय के व्यक्तित्व को लेकर एक विदेशी पत्रकार ने लिखा है –

"... नेहरू की शालीन बेटी की सुंदर आंखों में मैंने जब-जब देखा है, मुझे लगा है कि उनकी थाह पाना कठिन है। जब वह बोलती हैं या किसी विषय पर अपनी राय जाहिर करती हैं तो मालूम होता है जैसे किसी बच्चे को बहुत सादा तरीके से सब कुछ समझाने की चेष्टा कर रही हों। उनकी आवाज मीठी है और

एक फूल जैसी .. उनसे पहचान के बाद किसी भी अनजान और अपरिचित व्यक्ति को उनके प्रति गहरा अपनत्व महसूस हो सकता है ..."

उस काल में बहुत से युवा लोग ऐसे थे, जिनकी बात पंडित जवाहरलाल जी तक नहीं पहुँच पाती थी, या जो उनसे भेंट नहीं कर पाते थे। ऐसे लोगों से इंदिरा जी उनकी बात सुन लिया करतीं, उनके पक्ष समझतीं, और उनकी बातों को जवाहरलाल जी तक पहुँचाया ही नहीं करतीं बल्कि किसी जायज बात के लिए कोई-न-कोई कार्यक्रम या योजना भी बनवा दिया करतीं थीं।

नेहरू जी तुनुक मिजाज भी थे। जितने ममताशील, उतने ही जिद्दी भी। किसी बात पर बिगड़ जाएं तो उन्हें मनाना, शांत करना आसान काम नहीं था। इंदिरा जी अपने पिता का स्वभाव जानती थीं। मौका देखतीं और उसी के अनुसार उनके सामने बात रख दिया करतीं। इस तरह बहुतों की बहुतेक समस्याएँ हल हो जातीं। वे इंदिरा भक्त हो जाया करते।

पर वह जानती थीं कि नए, बिखरे हुए देश की साज-संभाल में नेहरू भी कम नहीं बिखर रहे हैं। उनके सामने अपने अविकसित देश की समस्याएँ थीं। अंतर्राष्ट्रीय तनाव भी थे। नये राष्ट्रों से संपर्क भी बनाने थे। सबसे मिलकर सबके साथ अपने को संजोते हुए भारत को चलाना था। ऐसी स्थिति में नेहरू जी सदा ही समस्याओं से घिरे रहते थे। बेमौके, बेतुकी बात या विषय पर तुरंत बौखला जाते ... इन अवसरों को पहचानना और समझना इंदिरा जी के वश का ही काम था। वह निबाह लेती थीं।

मुझे स्मरण है, बहुत से लोग तब यह कह दिया करते थे कि इंदिरा जी बेकार ही नेहरू जी के साथ रह रही हैं, पर ऐसे लोग साधारणत: गहरी सूझबूझ वाले नहीं थे। न ही वे यह जानते थे कि घोर अकेलेपन में गिरफ्तार समस्याओं से घिरे जवाहरलाल जी को ममता और आत्मीयता के साथ-साथ विश्वसनीय

सहयोग की भी आवश्यकता थी और वह आवश्यकता केवल इंदिरा ही पूरी कर सकती थीं। बखूबी कर भी रही थीं। यही नहीं, नेहरू जी के साथ रहकर इंदिरा जी ने उन तमाम स्थितियों को बखूबी देखा, समझा जिनमें से देश गुजर रहा था। यह वह समय था जबकि भारत की एक राष्ट्रीय नीति बननी थी।

कालांतर में इंदिरा गांधी ने देश को जिस बीस सूत्री कार्यक्रम के विचार से जोड़ा वह संभवतः उसी दौरान उनके मन में पनप और बढ़ चुका था, जब वह नेहरू जी के साथ तीनमूर्ति भवन में रह रही थीं। व्यस्त होते हुए भी उस समय तक श्रीमती इंदिरा गांधी के पास इतना समय था कि वह समस्याओं को साधारण जन के बीच जाकर भी देख लें।

आजादी मिलने के साथ परीक्षा की घड़ी खत्म हो गई – ऐसा नहीं था। संभवतः यह सच्चा प्रारंभ था, जब किसी मनुष्य की अग्नि परीक्षा प्रारंभ होती है। इंदिरा जी के संपूर्ण जीवन में निरंतर परीक्षाएँ आती रहीं ... और परीक्षा का दौर कभी खत्म हुआ ही नहीं। किसी बार उनके श्रम की परीक्षा हुई, तो किसी बार निर्णय शक्ति की, किसी बार संवेदन की, किसी बार भावनाओं की, किसी बार विचारों की और किसी बार जीवन मृत्यु के बीच निर्णय करने के साहस की।

तब परीक्षा हुई थी – उनकी भावना और संवेदना की। श्री फिरोज़ गांधी का असामयिक निधन हुआ।

□□

नाजुक बेल पर जैसे बिजली टूट पड़े – यह परीक्षा ऐसी ही थी। फिरोज़ गांधी के निधन ने इंदिरा को बहुत गहरे, आत्मा तक संवेदनात्मक चोट पहुँचाई, बहुत से लोगों का विचार था कि इस घटना के कारण इंदिरा गांधी का व्यक्तित्व मुरझा जाएगा, वह टूट जाएँगी। किन्तु उन्होंने आश्चर्यजनक शक्ति और साहस के साथ इस घड़ी को झेला। यह सच है कि मन की गहराई तक उन्हें

पति के निधन से चोट पहुँची थी, पर इस चोट को भी उन्होंने अंदर ही अंदर पिया। आखिर वह कमला नेहरू की बेटी थी। चेहरे पर उनका मन पढ़ना कठिन ही नहीं, असंभव था– वहाँ भी असंभव ही रहा। वह कठोर दीखीं, सह गईं, चट्टान की तरह।

पर इस चट्टान के भीतर का दर्द, दर्द का सोता, किसी को नजर नहीं आया। यह कैसा था, कितना था, इसकी कल्पना



पिंता और पत्रों के साथ

मोहम्मद यूनुस के उस संस्मरण से होती है, जिसमें उन्होंने इंदिरा जी की उस समय की मनः स्थिति के बारे में बतलाया है। उन्हें इंदिरा गांधी ने उस समय एक खत लिखा था। इस खत में वह लिखती हैं –

" .... मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या लिखूँ। इस दुख की घड़ी को मैं कैसे झेलूँ? मेरे और फिरोज़ के बारे में तुम शायद सबसे अधिक जानते हो। हम में मतभेद भी रहे, और गहरी आत्मीयता भी। इतनी गहरी आत्मीयता शायद पहले कभी नहीं रही। अभी हम कश्मीर गए थे। करीब एक महीना साथ रहे श्रीनगर में। हमने भविष्य के लिए कई योजनाएँ बनाईं थीं। बच्चों को इस उम्र में माँ से अधिक आवश्यकता पिता की होती है। मैं एकदम शून्यता का अनुभव कर रही हूँ। फिर भी जीवन-क्रम को तो चलाना ही है ..." यह पत्र जाहिर करता है कि इंदिरा गांधी ने बाहर से दीखते अपने चट्टानी चेहरे के भीतर दर्द के कितने समुंदर झेले होंगे।

सच तो यह है कि इंदिरा जी, जो बाहर से चट्टान की तरह दीखती थीं, भीतर से बहुत कोमल भी थीं, उन्हें सामान्य नारी की तरह रहने की बहुत इच्छा थी, जो घरेलू जीवन व्यतीत करे, घर संवारे, सजाए और प्रकृति से जुड़ी रहे। उन्हें पहाड़ों और प्रकृति से गहरा लगाव था। गति उन्हें पसंद थी, नृत्य के प्रति उनका झुकाव था। कभी रवींद्रनाथ ठाकुर के शांतिनिकेतन में पढ़ाई के दौरान उन्होंने नृत्य, गीत आदि सीखे भी थे। कहा तो यहाँ तक जाता है कि रवींद्रनाथ जी की इच्छा थी कि वह स्कूल की नाट्यमंडली के साथ मणिपुरी नर्तकी के रूप में सारे भारत को देखें, उसका दौरा करें, पर वह सब हो नहीं पाया। समय को उनसे कुछ और कराना था, ऐसा जो सदियों तक धरती की छाती पर इतिहास बनकर अंकित हो जाए।

नेहरू-नासिर-टीटो की महत्त्वपूर्ण और विश्व इतिहास में

स्मरणीय भेंट सन् 1958 में हुई थी। यहीं से तटस्थ राष्ट्रों के संगठन की नींव पड़ी ... नींव को इंदिरा गांधी ने संसार में "तीसरी विश्व शक्ति" का रूप दिया। नेहरू-नासिर-टीटो वार्ता में इंदिरा जी ने भी बहुत गंभीरतापूर्वक हिस्सा लिया था। यह बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा। संभवतः यही पहला अवसर था जबकि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के परदे पर इंदिरा का नाम उभरने लगा, इधर कांग्रेस में नई पीढ़ी धीमे-धीमे जोर पकड़ती जा रही थी और यह पीढ़ी इंदिरा गांधी को सामने लाने, राजनीति मंच पर चाहने की निरंतर माँग रख रही थी। इंदिरा जी सन् 1955 में अखिल भारतीय कांग्रेस के राजनीतिक मंच पर आईं। जब-जब कार्यसमिति की बैठक होती, तब-तब इंदिरा सक्रियतापूर्वक उसमें हिस्सा लिया करतीं। 1955 में वे कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्या चुनी गईं। इसी दौरान बाडुंग सम्मेलन हुआ। 1960 तक इंदिरा ने अपने व्यक्तित्व को संपूर्ण राजनीतिक शक्ति के रूप में विकसित ही नहीं, प्रमाणित भी कर दिखाया।

बाडुंग सम्मेलन में अनेक नेताओं से इंदिरा जी की भेंट हुई। विशेषकर अफ्रीकी राष्ट्र के नेताओं से। अनेक ने अनेक तरह से उनके राजनीतिक व्यक्तित्व और चातुर्य की प्रशंसा की। कुछ ने तो उस समय स्वीकार कर लिया था कि इंदिरा गांधी अद्भुत प्रतिभा की धनी हैं। उनकी टिप्पणी थी– "नेहरू की बेटी देखने में जितनी कोमल है, उतनी ही कठोर भी है...बाद में इतिहास ने पचासों बार यह साबित किया।

सन् 1957 में चीनी प्रधानमंत्री श्री चाऊ एन. लाई. भारत आए थे। भारत-चीन सम्मेलन संबंधों को लेकर बड़ी-बड़ी उम्मीदें जगी थीं। पंडित जी का सरल कवि मन भी भारत-चीन संबंधों को लेकर आश्वस्त रहा। इन वार्ताओं में इंदिरा जी भी उपस्थित रहा करती थीं। अनेक बार उन्होंने चीन और रूस के साथ भारतीय स्थिति को देखने-जानने का गहरा अध्ययन किया

था। संभवतः यही कारण था कि उसी समय इंदिरा गांधी ने बिना किसी भावुकता या कोमलता के कह दिया था – "रिश्ते दो तरफा निबाह पर चलते हैं। यह तो निश्चित है कि दो अच्छे पड़ोसियों में संबंध अच्छे ही होने चाहिएँ, पर यह संबंध कितने अच्छे हो सकते हैं – यह किसी एक पक्ष पर निर्भर नहीं है – दूसरे पक्ष पर भी है ... असल में रिश्ते, रिश्ते से नहीं, निबाहने से चला करते हैं"।

यह था इंदिरा जी का वह युवा राजनीतिक रुख और समझ-बूझ जो दूर-दूर तक वक्त के आईने में देखा जा सकता है। □□



बच्चों के साथ

अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्षों का इतिहास बहुत लम्बा है, किन्तु इनमें महिलाएँ गिनीचुनी ही रही हैं। श्रीमती गांधी सन् 1959 में अध्यक्ष बनी थीं, उसके पूर्व तीन महिलाएँ कांग्रेस अध्यक्ष पद पर रह चुकी थीं। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट (1917), श्रीमती सरोजिनी नायडू (1925), श्रीमती नेली सेन गुप्ता (1933) और श्रीमती इंदिरा गाँधी (1959)।

पर इनमें से हर कांग्रेस अध्यक्षा के समय दल की स्थिति एक सी नहीं रही। उस समय जबकि श्रीमती गांधी ने यह दायित्व संभाला, कांग्रेस दल, स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत नहीं था बल्कि उस समय दल सत्ता में स्थापित था। इसलिए यह एक सर्वाधिक जिम्मेदारी का समय था। सत्ता नियंत्रण और उससे लाभ की चेष्टा ने अवसरवाद को पनपा दिया था। ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जो दल में रहकर ही दल को भीतर से खोखला किए डाल रहे थे। उसे आंतरिक चोटें पहुँचा रहे थे। जहाँ-तहाँ लोगों ने छोटे-छोटे गुट बना लिए थे। यह गुटवाद धीरे-धीरे पूरी संस्था की साख खत्म कर रहा था। इंदिरा जी के लिए यह एक नया परीक्षाकाल था।

नेहरू जी के अपने साथियों में ही बहुत से उनसे भीतर ही भीतर सत्ता की भूख को लेकर जलन के शिकार हो गए थे। यह जलन उस समय तो दावानल बन गई, जब इंदिरा जी ने कांग्रेस अध्यक्ष पद का भार संभाला। तरह-तरह के षड्यन्त्र दल में ही शुरू हो गए। तरह-तरह की बातें कही जाने लगीं। पर इंदिरा जी ने आश्चर्यजनक दृढ़ता और कठोरता के साथ-साथ दया और क्षमा से भी काम लिया। उन्होंने देशव्यापी दौरे किए। छोटे से छोटे कांग्रेस जन से भेंट की। उसे बातचीत करने को उत्साहित किया। अपनी बात कहने का समय दिया। उसे समझाया बुझाया। इन तूफानी दौरों में एक बात जरूर उभर कर सामने आयी कि इंदिरा गांधी की राजनीतिक क्षमताओं और गुणों को

कांग्रेस के साधारण कार्यकर्ताओं तक ने पहचाना, नई पीढ़ी ने उसी समय निश्चित कर लिया था कि वह इंदिरा गांधी के साथ ही नहीं हैं, बल्कि इंदिरा ही उनके सपनों का भारत बना सकती हैं। जल्दी ही नतीजा सामने आने लगा। इंदिरा जी ने दल को संजीवनी प्रदान की। इस युवा शक्ति के अभ्युदय ने एक बार लगभग टूट चुके कांग्रेस दल को नया जीवन दिया। एक तरह से इंदिरा जी के लिए यह सबसे बड़ी राजनीतिक चुनौती थी, जिसे उन्होंने न केवल स्वीकार किया, बल्कि उस पर खरी भी उतरीं।
□□

उस दौरान जिन लोगों ने इंदिरा गांधी को देखा है, उनका कहना है कि इंदिरा के रूप में वह एक तरह से जवाहरलाल जी का नया जन्म ही था। ... लगता था ममता, तीखी बुद्धि,तेजस्वी वाणी, नया चेहरा जवाहरलाल की प्रतिमूर्ति ही उभर आई है। पिता देश को लेकर विदेश में एक साख और धाक जमाने में लगे हुए थे– बेटी सन्यासिनी की तरह कांग्रेस संगठन को विश्वास में बटोर रही थी जो निरंतर टूटन और बिखरने के कारण लगभग जर्जर हो गया था। कुछ लोगों का कहना है – ''इंदिरा ने अपने आपको पूरी तरह देश और जनसेवा में अर्पित करने का फैसला उसी समय कर लिया था जबकि वह फिरोज़ गांधी से अलग हुईं। फिरोज़ की मृत्यु ने उन्हें सचमुच सन्यासिनी बना दिया।

इस नए रूप में इंदिरा का भारतीय राजनीति में वह उद्‌भव प्रारंभ हुआ, जिसके प्रकाश को देश ने ही नहीं, विदेश तक ने पूरे एक लम्बे समय तक अपनी आँखों से देखा।

परीक्षा की घड़ियों से गुजरती इंदिरा गांधी के सामने एक और जबरदस्त परीक्षा काल आया .... संवेदन और विश्वास पर जबरदस्त चोट करता हुआ, यह था जवाहरलाल जी का निधन।
□□

जवाहरलाल जी के शरीर और मन को उसी समय बहुत बड़ा झटका लगा था, जब उन्होंने नये भारत की बुनियाद डालते

समय, अपनों से ही विश्वासघात और आलोचना पाई। उनसे, जिनके राजनीतिक और सामाजिक उत्थान में स्वयं जवाहरलाल ही कारण थे। पर इस टूटे मन और विश्वास को सर्वाधिक क्षतिग्रस्त किया उनके विश्वसनीय चीनी मित्रों ने। जवाहरलाल उस पीढ़ी के राजनीतिज्ञों में से थे, जो कविता और कला से गहरी आत्मीयता रखते थे। वे साहित्य के शौकीन ही नहीं, स्वयं में भी कवि जैसा हृदय रखते थे। भावुक मन जवाहरलाल के लिए जीवन हो या राजनीति सभी जगह मूल्यों का अपना महत्व था और वह मानवीय मूल्यों की राजनीति के न स्वयं समर्थक थे बल्कि अनुयायी भी रहे थे। गांधी, रवीन्द्रनाथ और लोकमान्य जैसे मूल्यवाद में विश्वास रखने वाले नेहरू जी के लिए मित्रता की आड़ में चीन द्वारा भारत के साथ किया गया विश्वासघात बहुत बड़ी चोट बना ....

स्वतंत्रता के लिए किए गए निरंतर संघर्षों के दौरान उनका शरीर और मन उतना नहीं टूटा था, जितना कि नए भारत की स्थापना के लिए किए गए सतत् संघर्ष में टूटा। रही-सही चोट पूरी कर दी चीन ने, जिस पर आत्मीयता और समूचा विश्वास उड़ेलकर उन्होंने पड़ोसी राष्ट्र का सम्मान किया था उसे स्नेह दिया था।

भारत पर चीनी आक्रमण हुआ। हालांकि भारतीय सेनाओं ने चीन को मुँहतोड़ जवाब दिया, पर नेहरू जी बहुत आहत हुए ... संभवतः इसी आघात का परिणाम था कि देशवासियों ने पहली बार अपने समय के सर्वाधिक प्रिय नेता को तकलीफ से घिरे हुए पाया। इंदिरा जी ने इस बीच प्रतिक्षण वृद्ध पिता की मनःस्थिति को संयत रखने का प्रयत्न किया किन्तु शीशे में पड़ी दरार फिर नहीं संभल सकी। पंडित जी सन् 1964 में शरीर त्याग कर गए ... तारीख थी 27 मई।

इंदिरा जी के लिए यह बहुत बड़ा आघात था। एक-एक

कर उनका संपूर्ण अस्तित्व बिखराव के दौर में आ गया। कुछ ऐसे ही जैसे जब समुद्र किसी झोपड़े को अपनी ताकतवर हिलोर के साथ बहा ले जाए और तिनका-तिनका बिखर जाए। सारा देश



होली की-खुशियाँ

आसुओं से भर उठा, केवल कांग्रेस ही नहीं, कांग्रेस विरोधी भी सन्न रह गए....

पर इंदिरा गांधी ने अपने आप को ऐसे अवसर पर भी समेटा। उस बिखराव के तिनके-तिनके को समय की भारी जिम्मेदारियों के बहाव में संजोया, इकट्ठा किया और आश्चर्यजनक आत्मविश्वास के साथ फिर से उसे नए घर की शक्ल दी।

श्री लालबहादुर शास्त्री को कांग्रेस दल का नेतृत्व सौंपा गया। वह नेहरू के न केवल प्रियजनों में से थे, बल्कि उन्हीं की तरह संघर्ष में पले हुए थे। शास्त्री जी ने मंत्रिमंडल का गठन करते ही इंदिरा गांधी के उजले व्यक्तित्व की ओर ध्यान दिया। उन्होंने महसूस किया कि नेहरू की यादगार के तौर पर नहीं, बल्कि नेहरू की समझ-बूझ को विरासत में संजोये रहने वाली महिला नेत्री को अपने साथ रखना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। इंदिरा जी को बनाया गया-सूचना एवं प्रसारण मन्त्री।

नये कार्यभार को ग्रहण करते ही इंदिरा संपूर्ण तन मन से पुनः कर्मरत हुईं। उनके सामने न केवल पिता के अधूरे काम थे, बल्कि वह दृष्टि भी थी जो युवा नेतृत्व की दूरंदेश नजर से होती है।

सूचना और प्रसारण मन्त्री रहने के दौरान इंदिरा जी ने जिस तरह नई-नई योजनाएँ बनाईं, संवारीं उन सबके कार्यान्वयन का ही परिणाम है कि आज सुदूर भारत वर्ष में रेडियो और टेलीविजन का जाल फैलता चला जा रहा है ... बहुत कम लोग जानते हैं कि इंदिरा गांधी की तत्कालीन परिकल्पनाओं में ही यह सब कुछ था, जिससे भारत आज लाभान्वित हुआ है।

परख का दौर प्रारंभ ही हुआ था यह। असली परख उस समय शुरू हुई, जबकि एक दुर्घटना से पुनः भारत का आमना-सामना हुआ। यह था भारत पर पाकिस्तान का

आक्रमण। इस आक्रमण के फलस्वरूप पाकिस्तान को मुँह की खानी पड़ी। शास्त्री जी के नेतृत्व में भारतीय जनमानस और सेना ने पाकिस्तानियों को ऐसा सबक सिखाया, जिसने उन्हें कई बरसों के लिए इस दिशा में मुहँ न करने के लिए बाध्य कर दिया। □□

सबक देने के लिए भारतीय सेना ने पाकिस्तान के भीतर तक प्रवेश किया, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय दबाव ने भारत की सेनाओं को पुनः उसी क्षमा और दया के संकल्प का स्मरण दिलाया जिसने उन्हें और आगे न बढ़ने को बाध्य किया। पाकिस्तान समझौते की बातें करने लगा और गांधी की तरह शास्त्री जी ने क्षमा का वही रुख अख्तियार किया, जो उन्हें गांधी जी से विरासत में मिला था। शास्त्री जी ताशकंद गए, जहाँ कि समझौता वार्ता होनी थी। इस वार्ता का परिणाम यह निकला कि भारतीय फौजें पुनः अपने ठिकानों पर लौट आएँगी और पाकिस्तान आगे कभी इस तरह की हिमाकत नहीं करेगा।

बात लगभग खत्म हो चुकी थी। किन्तु दुर्भाग्यवश समझौते की बातचीत हो जाने के बाद उसी रात शास्त्री जी को ताशकंद में दिल का दौरा पड़ा और उनका निधन हो गया। एक बार पुनः भारत नए नेतृत्व की खोज के लिए यहाँ-वहाँ देखने लगा।

शास्त्री जी के निधन के बाद कांग्रेस दल के भीतर एक भारी खींचतान शुरू हुई कि नेतृत्व पद कौन संभाले?... एक बड़ा वर्ग था, जो बूढ़ों को सत्ता में लाने के लिए हावी था, जबकि एक ऐसा वर्ग भी था, जिसे देश का नेतृत्व युवा हाथों में सौपने की हार्दिक इच्छा थी। इस नेतृत्व के लिए श्रीमती इंदिरा गांधी को चुना गया और जूझने के लिए सामने लाया गया। इंदिरा में वे जवाहरलाल की छवि देखते थे। कांग्रेस के अन्य नेताओं में उन्हें बौर्जुएपन की झलक दिख रही थी। भीतर खींचतान और पार्टी

की कशमकश के दौरान इंदिरा को नेतृत्व सौंपा गया ... वह स्वयं इंदिरा जी के लिए भी काफी परेशानी खड़ी कर देने वाली स्थिति थी। वे ऊहापोह में पड़ गईं। कारण यह था कि इंदिरा गांधी ने स्वयं को उस समय तक इस प्रतिस्पर्धा में पड़ने और इतनी बड़ी जिम्मेदारी लेने के लिए अपने को तैयार नहीं किया था।

इंदिरा जी का स्वभाव रहा है कि वह परिस्थिति के अनुसार स्वयं को किसी भी बवंडर का सामना करने के लिए तुरंत तैयार कर सकती थीं... इस बार भी यही हुआ। ठीक उसी तरह जिस तरह पहले कई बार होता रहा था। साहस, शक्ति, आत्मविश्वास और निरंतर कर्मविश्वास उनके व्यक्तित्व में बचपन से ही रहे थे। यह सभी गुण एक बार पुनः उभरे और इंदिरा गांधी ने पहली बार प्रधानमन्त्री पद का भार संभाला।

22 जनवरी, 1966।

श्रीमती इंदिरा गांधी ने पहली बार भारत के प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण की। यह शपथ ऐसी गरिमा और गौरव के निर्वाह की थी, जिस पर जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर शास्त्री जैसे पुराने, मंजे हुए नेताओं का नाम और काम अंकित था। इसके साथ- साथ वे करोड़ों निगाहें भी थीं जो इंदिरा जी के पदभार संभालते ही उनकी ओर इस आशा और विश्वास से टिक गई थीं कि इंदिरा कुछ नया कर दिखाएँगी। ये युवा स्वप्न थे। ये भारत की एक नई पीढ़ी की कल्पना थे।

और इंदिरा जुट गयीं। दिन-रात का परिश्रम, नए-नए दायित्व, नई-नई योजनाएँ, विकास और विज्ञान के रास्ते पर नए-नए कदम ... विश्व राजनीति को पुनः नया मोड़ भी देना था जो भारत के नए नेतृत्व को अपनी-अपनी तरह मोड़ लेने की कोशिश में लगी थी। समूचा विश्व गुटवाद से घिरा हुआ था। ऐसे में भारत की तटस्थता विश्व महाशक्तियों को निरंतर अखर रही थी। खासतौर से इस कारण भी कि दोनों ही महाशक्तियों ने यह



एक सैनिक अग्रिम चौकी पर

महसूस किया कि भारत का नेतृत्व धीमे-धीमे एक तीसरी महाशक्ति के रूप में उदित होता जा रहा है। इस महाशक्ति का रुख और राहें क्या होंगी? भारतीय नेतृत्व की दृष्टि क्या होगी? विदेश नीति क्या होगी? यह सब निर्भर था नये नेता पर।

इंदिरा जी आयु, अनुभव और व्यक्तित्व के मामले में इस दृष्टि से सभी को नई लग रहीं थीं। नई होने के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व को पूरी तरह समझा भी नहीं जा सकता था। विदेशी

राजनीति इस कारण भी सक्रिय हुई कि भारत सहसा एक नए नेतृत्व में उभरकर सामने आया था।

श्रीमती गांधी से सभी ने अपनी-अपनी तरह से उम्मीदें लगा रखीं थीं। दूसरी ओर भारतीय जनमानस की भी नई-नई उम्मीदें थीं। तीसरा पक्ष था, दल के भीतर की शरारतें, जो कभी-कभी षड्यंत्र ही हद तक पहुँच जाया करतीं। ऐसी स्थिति में श्रीमती गांधी को बहुत सतर्क होकर चलना था। सावधानी से हर शब्द बोलना था। अतिरिक्त सावधानी अपने इर्द-गिर्द के वातावरण में रखनी थी ...

इंदिरा ने आश्चर्यजनक गति से यह सब संभाला, संजोया, और पदग्रहण से अगले छह महीनों में ही साबित कर दिया कि इंदिरा गांधी का व्यक्तित्व हर भारतीय राजनेता से बिल्कुल अलग किस्म का है। वह अपूर्व दृढ़ता और कौशल के साथ दलीय नेतृत्व को संभालते हुए विश्व राजनीति की हर आड़ी-तिरछी चौसर का सामना करने में समर्थ ही नहीं, सिद्धहस्त हैं। परिणाम यह हुआ कि धीमे-धीमे विदेशी राजनीतिज्ञ भी भारत के विरुद्ध कुछ ऐसा वैसा सोचने या करने में हिचकिचाने लगे।

जिस अद्भुत लगन, विश्वास और धैर्य के साथ उन्होंने अपने इस नए काम को सँभाला और अपने व्यक्तित्व को उसके अनुसार ढालकर योग्यतम साबित किया, उसकी देश के ही नहीं विदेश के भी अनेकानेक लोग प्रशंसा करते हैं। मुझे स्मरण है कि एक बार बात-बात में इंदिराजी के इस राजनीतिक अभ्युदय को लेकर एक पत्रकार ने टिप्पणी की थी— "नेहरूजी की बेटी के रूप में नहीं, इंदिरा जी को केवल इंदिरा गांधी की तरह देखा जाना ज्यादा उचित है। वे कई मामलों में इतनी सचेत और शक्तिशाली हैं कि उनकी कोमलता और मुस्कान देखकर सहसा विश्वास नहीं होता है कि वे वही इंदिरा हैं जो सरल, शांत-सी

दिखती थीं ... उन्हें देखकर लगता है जैसे किसी समुद्र को देख रहा हूँ। समुद्र, जिसकी थाह नहीं होती। जिसके भीतर मोती के खजाने भी होते हैं और हिंसक जलचरों का उत्पात भी। फिर भी वह सभी सहता रहता है। वह अपने आप मे एक संसार होता है।"

अब लगता है जैसे उस पत्रकार का कहना केवल सही ही नहीं अपितु बहुत हद तक इंदिरा गांधी के संपूर्ण व्यक्तित्व के लिए नाकाफी भी था। यदि यह कहा जाए कि इंदिरा में सागर की तरह ही शालीनता और गरिमा का अनंत रहस्य छुपा हुआ था तो गलत नहीं होगा। वह बड़ी से बड़ी बात को समुद्र की तरह ही छिपा सकती थीं – शांत रहती थीं। उनके चेहरे पर किसी भी भूचाल का प्रभाव नहीं दीख पड़ता था। वह किसी भी समय असावधान नहीं रहती थीं। वह समुद्र की तरह विशाल हृदया थीं तो समुद्र की ही तरह प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देने की भी शक्ति रखती थीं।

खतरा उन्हें डरा नहीं सकता था। डर उनको डिगा नहीं सकता था।

प्रधानमंत्रित्व पद पर आने के बाद उन्होंने श्री मोरारजी देसाई को उप-प्रधानमन्त्री बनाने का प्रस्ताव अस्वीकार करते हुए उस समय कांग्रेस पर पूरी तरह हावी हो चुके कामराज के उस वर्चस्व को भी अस्वीकारने में संकोच नहीं किया, जिसके कारण बड़े-बड़े सहम जाया करते थे। उन्होंने अपना मंत्रिमंडल बनाने में पूर्णतः अपनी स्वतंत्र निर्णायक शक्ति की कसौटी पर लोक-प्रतिनिधियों को कसा, उनका चुनाव किया।

प्रधानमंत्री चुने जाने के बाद उनकी सबसे बड़ी समस्या केवल यह थी कि मन-मस्तिष्क में देश के लिए कुछ कर गुजरने की राह में – भीतर से आने वाले व्यवधानों, रुकावटों को पहले संभाला जाए। उसके बाद उन्हें देश के जन-मानस को अपनी

बात समझाकर नए भारत के विकास के साथ जोड़ा जाए। उसे यह भी बतलाया जाए कि इंदिरा भारत की प्रगति के लिए क्या कुछ और किस तरह करना चाहती हैं?

1967 में आम चुनावों की घोषणा हुई। इंदिरा गांधी ने देश में तूफानी दौरे किए। वह देश के आम जीवन से जुड़ीं, सामान्य जनों तक पहुँचीं। वे भारत की आत्मा तक पहुँचीं। यह एक ऐसा मौका था, जिसके बाद उनके दिलोदिमाग में सबसे पहले भारत का आर्थिक विकास करने, उसकी खेतिहर ताकत बढ़ाने की योजनाएँ बैठ गईं। उन्होंने संभवत: उसी दौरान निश्चित कर लिया था कि यदि वह सत्ता में पहुँचीं तो संपूर्ण शक्ति से आर्थिक मोर्चे पर भारत को मजबूत करने में जुट जाएँगी। भारत की गरीबी हटाना उनका पहला कार्यक्रम होगा। इस कार्यक्रम के तहत वे उन पूंजीवाद के शिकंजों से भी भारत को आजाद करने का प्रयत्न करेंगी, जिनके कारण बहुत सी समाजवादी योजनाएँ देश में लागू नहीं हो पा रही थीं।

श्रीमती गांधी की यात्रा और देश के कोने-कोने तक संपर्क ने चुनाव में उन्हें विजय प्रदान की। पर यह विजय उन्हें कमजोर लगी। संभवत: इस कारण कि अनेक राज्यों में कांग्रेस हार भी गई थी। कहीं-कहीं बहुमत में कमी भी आ गई थी। इंदिरा के सामने दो चुनौतियाँ थीं। एक यह कि वे अपने दल की हालत सुधारें, उसे मजबूत करें। दूसरी यह कि अपने सपनों के भारत को गढ़ने के लिए देश का प्रशासन चुस्त-दुरुस्त करें। भ्रष्टाचार मिटायें। समाजवादी योजनाओं को अधिक से अधिक लागू करें।

श्रीमती गांधी ने एक कठोर निर्णय लिया कि वह इस कसौटी पर खरी उतरकर रहेंगी। वे दिन रात मेहनत में जुट गईं। छोटे से छोटे क्षेत्र का दौरा किया। उसके विकास के लिए योजनाएँ बनाईं। अपने साथियों को विश्वास में रखना और साथ-साथ सामान्य जन लाभ पा सके ऐसी कारगर कार्यवाइयाँ अमल में लाना उनका ही काम था।

उन्होंने जल्दी ही पाया कि वह जिस कसौटी पर कसी जा रही हैं, निरंतर खरी भी उतर रही हैं। देश आर्थिक शक्ति प्राप्त करने लगा है। गरीबों और पिछड़े हुए तबकों को शिक्षा, रोजगार और निवास मिलने लगे हैं ... देश का रुकता-थकता तन्त्र धीमे, धीमे उस गति पर आ पहुँचा, जहाँ से तरक्की प्रारंभ हो जाती है। □□

काम करने की इच्छाभरी ललक उस समय जिन लोगों ने इंदिरा जी के भीतर देखी, वे भलीभांति जानते हैं कि तत्कालीन इंदिरा एक तूफान की तरह थीं जो केवल समुद्र से उठ सकता है। उनका सोचना, और उनका काम करना, कभी भी किसी नदी की बाढ़ जैसा नहीं रहा। वह सदा ही तूफान जैसी रहीं। जैसी कभी बचपन में हुआ करती थीं। स्फूर्ति, शक्ति और चलने-फिरने, मेहनत करने में उन्होंने अपने बहुमूल्य जीवन और आयु का एक बहुत बड़ा अंश इस धरती के लिए दिया।

12 अक्तूबर, 1972 की बात है। इंदिरा जी सरदार पटेल की जयंती के अवसर पर सरदार पटेल विद्यालय के वार्षिक समारोह में भाषण करने गईं। मैं भी उस दिन वहाँ थी। उस भाषण में उन्होंने जो कुछ कहा, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वह किस तेजी से नए भारत की ओर देख रही थीं। नई पीढ़ी पर उनकी आशाएँ लगी थीं।

मुझे याद है इस अवसर पर उन्होंने अपने बचपन के कई संस्मरण बच्चों को सुनाए। प्रेरणादायक बातें कीं, फिर सरल शब्दों में बच्चों को भारत के लिए संकल्प करके काम में जुट जाने की प्रेरणा दी।

उन्होंने कहा – ''आमतौर से मुझे आदेश देना अच्छा नहीं लगता। क्योंकि मुझे याद है कि जब मैं छोटी थी तो मुझको भी अच्छा नहीं लगता था कि कोई मुझे आदेश दे और अगर कोई कहता था कि यह करना है तो मन में होता था कि यह नहीं करेंगे।



अपनी पोती के साथ

कुछ दूसरा करेंगे। लेकिन फर्क क्या था ? फर्क यह था कि हम सब एक बहुत बड़े आंदोलन में थे। थोड़ी देर समझ में आता था। मन

भी करता था कि अपना कुछ करें, फिर आंदोलन की लपेट में आ जाते थे। आंदोलन के अनुशासन में आ जाते थे। और फिर यही फिक्र होती थी कि इतना बड़ा आंदोलन है और हम इतने छोटे हैं। फिर भी हमें इसमें कुछ करना आवश्यक है। यही नहीं कि हम बच्चे हैं, इसलिए हमें इसमें भाग नहीं लेना है। आपको शायद मालूम है कि यही कारण है कि मैं बहुत छोटी थी, तब मैंने अपने पिताजी से, अपने दादाजी से, और गांधीजी से भी कहा कि मुझे कांग्रेस का सदस्य बनना है। तो उन्होंने कहा कि हमारी संस्था का नियम है कि कोई बच्चा सदस्य नहीं हो सकता। तभी रामायण से प्रेरणा लेकर मैंने ''वानर सेना'' बनाई थी और अलग-अलग शहरों में उसकी शाखाएँ भी खुली थीं। हमारे इलाहाबाद में, जहाँ हम रहते थे, वहाँ हजारों बच्चे थे – 8 साल से लेकर 13 साल तक के।

'' ... अब आप कहेंगे कि छोटे बच्चों ने क्या किया? क्या सेवा की? कितनी बातें हैं जो वे कर सकते हैं? जो जरा बड़े थे, वे तो दफ्तर का काम करते थे, ऐलान करते थे। नोटिस लिखते थे। कुछ जेल में जाते थे मुलाकात करने। क्योंकि बहुत से हमारे राजनीतिक कैदी होते थे जिनके परिवार जा नहीं सकते थे तो वे मुलाकात करते थे।

'' ... एक काम था, जिसे सबसे गरीब, छोटे लड़के करते थे। पुलिस स्टेशन के सामने, वे सड़क पर खेलते थे और आकर हमको बताते थे कि आज वहाँ फलाँ गिरफ्तार हुआ, आज इस घर में तलाशी होगी। तो पूरी खबर मिल जाती थी। अब वे लोग कहते थे कि कैसे इतनी खबरें मिल जाती हैं? लेकिन जब इतने बच्चे शहर भर में फैले हुए हों तो बहुत सी खबरें आ जाया करती थीं ....''

□□

इस तरह बड़ी से बड़ी, आसान से आसान उदाहरणों और बातों से समझा देना इंदिरा गांधी की विशेषता थी। उस भाषण में

इंदिरा गांधी सहसा विगत को वर्तमान से किस तरह जोड़कर एक सीख बच्चों को दे गईं थीं, यह निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है। उन्होंने आगे कहा था –

"... आज भारत के सामने यह गरीबी सबसे बड़ी चुनौती है, लेकिन इससे भी बड़ी चुनौती यह है कि किस रास्ते पर भारत को जाना है? हमारी पुरानी सभ्यता है, संस्कृति है, परम्परा है, जिस पर हमको बहुत गौरव है, लेकिन हमको मालूम है कि उसमें सब अच्छी चीजें नहीं हैं। उसमें जो कमजोरियाँ या खराबियाँ हैं, उनसे गांधीजी ने शुरू से हमको लड़ने को कहा। ... अंधविश्वास से, जातिवाद से, जो एक को ऊँचा समझता है और दूसरे को नीचा समझता है – उन सबसे लड़ने को कहा..."

अंत में वह बोलीं – "मेरी आशा है कि आप सब ऐसे नागरिक बनेंगे, जिनके बारे में आती हुई पीढ़ियाँ कहें कि बच्चे थे, जिन्होंने भारत के समाज को नया मोड़ दिया, जिन्होंने अपनी योग्यता से, अपनी सेवा से इस देश को महान् बनाया ..."

□□

सरल से सरल शब्द, सहज सी बातें, भाषण में बातचीत इंदिरा जी की अपनी ही विशेषता थी। यह विशेषता शायद इस कारण से आई थी कि वह लोगों को भाषण या उपदेश देना कभी पसंद नहीं करती थीं। वह चाहती थीं कि लोग सच्चाइयों के करीब पहुँचें। साधारण से साधारण अशिक्षा में घिरा हुआ आदमी भी उस चेतना को समझ ले जो देश की जरूरत है। इस जरूरत के प्रति उन्होंने लोगों को जगरूक किया। उन्हें चेताया।

श्रीमती इंदिरा गांधी का व्यक्तित्व, राष्ट्रीय से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उस समय स्वीकार किया जाने लगा, जब सन् 1971 के 24 अक्तूबर को उन्होंने विदेश यात्राएँ आरंभ कीं। इन यात्राओं का असली उद्देश्य संसार के देशों को यह समझाना था कि भारत किन नीतियों पर चलना चाहता है और किस तरह का

व्यक्तित्व वह अपना बनाए रखना चाहता है। श्रीमती गांधी की इस यात्रा को लेकर बहुतों ने बहुत तरह की विवेचना की, किन्तु इस यात्रा का सबसे बड़ा लाभ देश को यह मिला कि विदेश के जिन देशों में बड़े-बड़े राजनयिकों से इंदिरा जी ने भेंट कीं, वे उन पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ सकीं। यही नहीं वे लोग यह भली प्रकार समझ गए कि भारतीय नेतृत्व ऐसी शक्ति के हाथों में है, जिसके कारण देश अपने सम्मान, आदर्श और तटस्थता की विचारधारा की रक्षा करने में पूरी तरह समर्थ है।

□□

अंतर्राष्ट्रीय मानचित्र पर इस महान महिला का स्पष्ट चित्र उभरा, विशेष रूप से उस समय जबकि पाकिस्तान के तत्कालीन तानाशाह जनरल याह्या खाँ, बंगनेता मुजीबुर्रहमान को कैद करके पश्चिमी पाकिस्तान के जन-मानस की आवाज घोंट देने पर आमादा थे। दमन, मारपीट, शासकीय बर्बरता का नतीजा यह निकला कि बंगभाषी पाकिस्तान से भाग-भागकर भारतीय सीमा में प्रवेश करने लगे। फटेहाल, भूखे, दरिद्र लोगों की एक असीमित भीड़ भारतीय सीमा में चली आ रही थी।

भारत पहले ही अपनी गरीबी और बेबसी से जूझ रहा था, जिस पर यह नई मानवीय जिम्मेदारी भारत के सिर पर आ पड़ी। यह ऐसी स्थिति थी जबकि भारतीय नीति और उसके सांस्कृतिक मूल्य चुनौती का सामना कर रहे थे। एक ओर था भारत का अपना बचाव, दूसरी ओर जिम्मेदारी थी उन असंख्य नर-नारियों और बच्चों के जीवन की, जो रक्षा के लिए ही भारत की ओर आँधी की तरह आ रहे थे। सभी देशवासी सोच में थे कि इस स्थिति का प्रधानमंत्री किस तरह सामना करेंगी। खासतौर से वे लोग इस स्थिति में ज्यादा ही आनंद ले रहे थे जो इंदिरा जी के "अपने" भी बने रहते थे और भीतर ही भीतर उनको नुकसान पहुँचाने की कोशिश भी करते रहते थे।

इंदिरा गांधी ने जिस बुलंदी के साथ परंपरागत भारतीय संस्कृति की रक्षा करते हुए उन असंख्य लोगों की भूख, गरीबी, फटेहाली और बदहवासी में आगे बढ़कर सहायता की, वह सारी दुनिया को भौंचक्का कर गईं ... उन्होंने उनकी सहायता करना अपना मानवीय धर्म समझा। भारत ने उन बेबसों के दर्द को अपना दर्द समझकर उनकी सहायता की। इस मनुष्यतापूर्ण व्यवहार का पाकिस्तान के अधिनायकों के बल पर चल रही सरकार के मुँह पर ही नहीं, दुनिया के उन तमाम देशों के मुँह पर तमाचा पड़ा जो शक्ति के आधार पर बेबसों को कुचले रखना चाहते थे।

याह्या खाँ चिढ़ गए। उनकी नीति बुरी तरह बदनाम हुई। भारत भी खासी मुसीबत में पड़ गया। यह मुसीबत कैसी थी? इसका अनुमान प्रसिद्ध फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ आंद्रे मालाँ के इस कथन से लगाया जा सकता है। उन्होंने कहा था – ''इस महान महिला (इंदिरा) ने एक करोड़ आदमियों की मुसीबत अपने ऊपर मोल ले ली है...''

''इंदिरा ने इन लाचार, सताए हुए लोगों का पक्ष सारी दुनिया के सामने रखा। वह पाकिस्तानी शासकों की दमनपूर्ण नीति के विरुद्ध मानवता की आवाज बराबर बुलंद करती गईं...''

इस बुलंदी को सहन कर पाना बर्बरतापूर्ण पाक शासकों के लिए कठिन हो गया। नतीजा यह निकला कि चिढ़कर वे भारत पर टूट पड़े। ... उन्होंने सेना द्वारा भारत की तमाम सीमाओं पर आक्रमण कर दिया। हवाई हमले प्रारंभ कर दिए।

अनचाहे युद्ध को भारत पर थोप दिया गया ... एक और परीक्षाकाल शुरू हुआ ...

परीक्षाएँ देना इंदिरा गांधी के लिए कभी कठिन नहीं रहा। भले वह बुद्धि की परीक्षा हो या नीति की। साहस की हो अथवा

दुस्साहस की। उनमें वीरता और सहृदयता दोनों ही भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हुई थीं।

भारत ने जवाबी कार्रवाई शुरू की। भारतीय सेनाओं ने पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही मोर्चों पर लड़ना प्रारंभ किया ... लड़ाई की आग बढ़ती चली गई। भारतीय जनता ही नहीं, विरोधी दलों का भी भरपूर सहयोग श्रीमती गांधी को मिला। भारत ने ऐसा मुँहतोड़ जवाब एक बार फिर से पाकिस्तान को दिया, जिसने दुनिया के इतिहास और नक्शे को ही नया मोड़ दे दिया ... बंगलादेश में आजादी की समर्थक मुक्तिवाहिनी और उनकी सहायक भारतीय सेनाओं ने 4 दिसम्बर 1971 को पाकिस्तानी जनरल नियाजी के घुटने टिकवा दिए...



मदर टैरेसा के साथ

ये घुटने इस तरह टिके कि पाकिस्तान अपना एक बाजू ही हमेशा-हमेशा के लिए खो बैठा। जिस आतंक, दमन और बर्बरता के भरोसे पाकिस्तान ने समूचे मानवीय मूल्यों और मनुष्य की आजादी के रास्ते छीनने का दुष्प्रयत्न किया था, उसे इंदिरा जी की शक्ति, साहस और दृढ़ निश्चय के साथ-साथ निरंतर प्रयास ने मानव मूल्यों की जय के रूप में स्थापित कर दिया।

और यह एक नई इंदिरा का उभार था अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के आकाश पर।

□□

किसी ने इंदिरा को साहसी कहा है, किसी ने दुस्साहसी ... किसी की राय है कि इंदिरा गांधी जिद्दी थीं और किसी के अनुसार वह दृढ़ निश्चयी थीं। पर इंदिरा के सही व्यक्तित्व का आकलन किया जाए तो इंदिरा गांधी केवल निश्चयी थीं। निश्चय भी ऐसा जो चट्टान की तरह अडिग, पहाड़ की तरह अविचलित हो। इसी निश्चय शक्ति की झांकी श्री नटवरसिंह के एक संस्मरण में देखने को मिलती है। वे लिखते हैं—

"निर्गुट सम्मेलन में भाग लेने के लिए हम लुसाका गए। बंबई से उड़ान ली थी। विमान के कैप्टन को करीब पंद्रह मिनट बाद खबर मिली कि विमान में बम रखा हुआ है। यह एक साधारण व्यावसायिक विमान सेवा थी। सूचना प्रधानमन्त्री को पहुँचाई गई। वे उस समय कुछ पढ़ रही थीं ... मुझे तो सूचना सुनने के साथ पसीना छूटने लगा था, पर जब उनसे कहा गया तो वे शांत रहीं। बोलीं कि यह सब महज मजाक है। हम लोगों को अपनी यात्रा चलने देना चाहिए।

"मैंने यह बात श्री पी. एन. हक्सर को बताई। वे भी यात्रा में हमारे साथ थे। वे बोले कि – प्रधानमंत्री को बतला दिया जाए कि मुख्य सचिव उनके आदेश की अवहेलना कर रहे हैं। विमान को वापस मुड़ने का आदेश दिया जा रहा है।"

''परेशानी की बात थी कि हम लोगों के पास यह निश्चित करने का कि विमान में बम रखा है या नहीं,कोई साधन नहीं था। कौन है जो बम लेकर जा रहा है – यह जानना भी संभव नहीं था। खबर मिली थी कि कोई पटेल है, जिसके पास बम है, पर उस विमान में तो पाँच पटेल थे।''

''इस सारे सिलसिले में प्रधानमंत्री बिल्कुल शांत रहीं। यह उनका स्वभाव था। अंततः हम बंबई वापस उतर आए। विमान में तलाशी प्रारंभ हुई ...''

जैसा कि उम्मीद थी, उसमें कुछ नहीं निकला। पर इस संस्मरण से यह प्रकट है कि इंदिरा जी कितनी निडर और दृढ़ निश्चयी थीं।

□□

यही दृढ़ निश्चय और शक्ति उस समय भी देखी जा सकती है जबकि बंगलादेश के संदर्भ में भारत-पाक युद्ध छिड़ा हुआ था। इस युद्ध की सबसे भयानक घटना थी, पाकिस्तान की सहायता के लिए अमरीकी सातवें बेड़े का समुद्र में उतर पड़ना। संसार की भयंकरतम संहारक शक्तियों से संपन्न यह जहाजी बेड़ा सारी दुनिया में भय का वातावरण फैलाने के लिए काफी था। हमें स्वयं याद है कि इस समाचार ने साधारण भारतीय जन-मानस को भी एक अनजाने भय से भयभीत कर दिया था, किन्तु इंदिरा थीं कि उसी तरह दृढ़ और निश्चय पर अडिग थीं। नतीजा यह हुआ कि उस बेड़े का उतरना, आदि सभी घटनाएँ केवल हवा बनकर रह गईं। बंगलादेश आजाद होकर रहा।

राष्ट्रीय सीमाओं की रक्षा का अवसर हो या किसी नैतिक, व्यक्तिगत अधिकार का प्रश्न हो – इंदिरा गांधी उस समय सबसे बड़ी समर्थक के रूप में सामने आतीं और उस समय तक संघर्ष में लगी रहतीं जब तक कि जय न प्राप्त कर लें। अपने विचारों, विश्वासों, कार्यक्रमों और उनके अमल को लेकर भी

सदा यही रुख उन्होंने अपनाया। और शायद यही कारण था कि विदेशी शक्तियों की ओर से भारत को एक निश्चिंतता सी महसूस होने लगी थी। महाशक्तियाँ समझ चुकी थीं कि भारत एक ऐसे नेतृत्व के हाथों में है, जिससे सलाह ली जा सकती है, पर उसे मनचाही दिशा में मुड़ने या घूमने के लिए लाचार नहीं किया जा सकता।

देश की नीति क्या हो, इसे लेकर उन्होंने विकास पर जो टिप्पणी 1972 में अपने एक लेख में की, वह ध्यान देने योग्य है – उस लेख में वह लिखती हैं –

" ... यद्यपि हमने एक औद्योगिक राज्य की कुछ विशेषताएँ अर्जित कर ली हैं; और कुछ वर्ग तथा समूहों के लोग समृद्ध दिखलाई पड़ते हैं, तथापि विशाल जन-समुदाय अब भी गरीबी का जीवन व्यतीत करता है। पिछड़ा समुदाय अब भी अत्यधिक निर्धनता का जीवन व्यतीत कर रहा है। साथ ही विकास की प्रक्रिया ने विभिन्न सामाजिक वर्गों की विषमता की खाई को चौड़ा कर दिया है तथा राज्यों और एक ही राज्य के जिलों के मध्य एक नया असंतुलन पैदा कर दिया है।"

" हमारी संपूर्ण प्रगति ने उन कार्यक्रमों की विशालता की ओर ध्यान खींचा है, जिन्हें आगे पूरा करना है पर इससे उन कार्यक्रमों को पूरा करने की हमारी क्षमता बढ़ी है। हमने यह अनुभव किया है कि आर्थिक विकास की घिसी पिटी लकीर पर चलते रहने से दशकों तक आम जनता के जीवन स्तर पर उसका कोई असर नहीं पड़ेगा। अतः हमारी आर्थिक नीतियों का पुनर्मूल्यांकन जारी है ... हम निर्धनता पर – इसके प्रमुख रूप बेकारी पर प्रबल प्रहार का इरादा रखते हैं। हमारी अगली पंचवर्षीय योजना में विनियोजन और उत्पादन के ऐसे कार्यक्रमों पर जोर दिया गया है जिनका संबंध सबके लिए खपत के न्यूनतम स्तर की प्राप्ति और बड़े पैमाने पर रोजगार प्रदान करने की है..

उनकी विदेश नीति को लेकर उनका निम्न कथन ध्यान देने योग्य है, जिससे उनके सोचने, काम करने और मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित आस्था का प्रमाण मिलता है –

''... हमारी पहली चिंता रही है भारतीय स्वाधीनता पर किए गए किसी भी आघात को रोकना। अतः हम किसी शक्ति गुट के पिच्छलग्गू नहीं हो सके। फिर चाहे वह गुट कितना ही धनी और शक्तिशाली क्यों न हो। अंतर्राष्ट्रीय शांति बनाए रखने में हमारी समान दिलचस्पी रही है। क्योंकि भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास की यह अनिवार्य शर्त रही है। युद्धोत्तर काल में , जबकि संसार दो शिविरों में विभाजित था, जवाहरलाल नेहरू ने किसी भी शक्ति शिविर में शामिल होना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने हमारी स्वतंत्रता के लिए गुटमुक्त रहकर विश्व शांति में योग दिया। इसका अर्थ था हमारे निर्णय और कार्रवाइयों की स्वतंत्रता। किसी भी प्रमुख विवाद पर हम अपना मत प्रकट करने, और न्यायोचित कार्य को समर्थन देने में कभी नहीं हिचकें ...

'' अपनी विदेशी नीति के लक्ष्यों के अनुसार भारत ने हर देश से मैत्री कायम की। हमने राष्ट्रमंडल के ढ़ाँचे के अतंर्गत ब्रिटेन से नए संबंध कायम करने में पिछले संघर्षों को बाधक नहीं बनने दिया। शांतिवार्ता के जरिए और सभ्य तरीकों से भारत में फ्रांसीसी बस्तियों की समस्या पुर्तगाल अधिकृत बस्तियों से भिन्न तरीकों से सुलझा ली गई और उसके बाद फ्रांस से हमारा संबंध सौहार्द्रपूर्ण रहा। फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी, जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक और अन्य यूरोपीय देशों से हमारे संबंध समान हैं। एशिया, मध्यपूर्व, उत्तर अफ्रीका और सहारा के दक्षिण के, अफ्रीका के गुटमुक्त देशों के साथ हमारी विशेष सद्भावना है और आजादी की सुरक्षा, उपनिवेशवाद, नव-उपनिवेशवाद और रंगभेदों के खिलाफ समान संघर्षों के

सिद्धांतों पर आधारित हमारा सहयोग कायम है। लेटिन अमरीकी देशों से, जिनकी विकास समस्याएँ और चिंताएँ हमारी जैसी ही हैं, हमारी मैत्री है। भारत ने जापान को सदैव प्रभावभाली एशियायी देश माना है और जापान के साथ हमारा सहयोग मजबूती के साथ बढ़ रहा है...

देश और विदेशी नीति संबंधी एक राजनीतिक वक्तव्य होने के कारण श्रीमती गांधी के उपरोक्त कथन की भाषा कुछ कठिन जरूर है, पर इससे समझा जा सकता है कि वे किस सावधानी और सतर्कता के साथ साफ बात करने में विश्वास रखती थीं। उनकी साफ-साफ बातें करने की आदत को झलकाने वाली एक भेंटवार्ता का उद्धरण देना यहाँ जरूरी है। इस वार्ता से इंदिरा जी के स्वभाव, गुण, पसंद, नापसंद, नीति का बहुत सरल शब्दों में विवेचन मिलता है।

पश्चिम जर्मनी के एक पत्रकार ने उनसे एक आत्मीयता पूर्ण भेंटवार्ता की थी, इस वार्ता में उन्हीं की जबानी उन्हीं की हल्की सी कहानी जानने को मिलती है। पत्रकार ने जो कुछ पूछा है, उसमें इंदिरा जी के भीतर बैठी ममतामयी नारी और प्रकृति से स्नेह करने वाली महिला की तस्वीर भी बखूबी उभर कर आई है।

वार्ता प्रश्नोत्तरों में है:

प्रश्न : आपके लिए सबसे बड़ा दुख क्या है?
उत्तर : प्रियजनों की मृत्यु।
प्रश्न : आप कहाँ रहना चाहेंगी?
उत्तर : पहाड़ों में, जहाँ विशाल वृक्ष हों, नदी नाले हों, निश्चय ही ऐसी जगह भारत में है।
प्रश्न : आपके लिए सारी दुनिया की सबसे बड़ी सांसारिक खुशी क्या है?

उत्तर : कोई नहीं, लेकिन प्रगाढ़ आंनद के क्षण मैंने महसूस किए हैं।

प्रश्न : किन गलतियों को आप जल्दी माफ कर देती हैं?

उत्तर : जो संकोच के कारण की गई हों।

प्रश्न : आपका प्रिय औपन्यासिक नायक?

उत्तर : कहना मुश्किल है।

प्रश्न : इतिहास में आपके प्रिय नायक?

उत्तर : भारतीय दार्शनिक और संत आदि। शंकराचार्य तथा लिनार्दो-द-विंची।

प्रश्न : आप की स्त्री नायिकाएँ?

उत्तर : दरअसल मेरे मन में पुरुष और स्त्री नायक-नायिकाएँ नहीं हैं। लेकिन मैं उनका आदर करती हूँ, जो भयानक परिस्थितियों में भी विजयी रहे हैं और जिन्होंने अपना जीवन दूसरों के लिए न्यौछावर कर दिया है। उदाहरण के लिए हेलेन केलर, डगलस बादरे (पैर विहीन पायलट)।

प्रश्न : कविता में आपकी प्रिय नायिका कौन है?

उत्तर : मुझे नहीं लगता है कि कोई है।

प्रश्न : आपका कोई प्रिय चित्रकार?

उत्तर : बहुत से हैं।

प्रश्न : आपका प्रिय संगीतज्ञ

उत्तर : बाक और माजोर्ट।

प्रश्न : किसी पुरुष में आप किन गुणों का सबसे ज्यादा आदर करती हैं?

उत्तर : सीधे, साफ और समझने-बूझने तथा दूसरों की मदद करने की इच्छा रखनेवाले पुरुष का।

प्रश्न : और स्त्रियों में?

उत्तर : स्त्री-पुरुष – दोनों में – साहस, जिसमें नैतिक, बौद्धिक व शारीरिक साहस आते हैं।

प्रश्न : आपके सबसे फुर्सत के क्षण कौन से होते हैं?

उत्तर : पढ़ना, पहाड़ों, और जंगलों में घूमना।

प्रश्न : आपके चरित्र की मुख्य विशेषता क्या है?

उत्तर : लोगों के बारे में सोचना।

प्रश्न : अपने दोस्तों में आप किस बात का सबसे ज्यादा आदर करती हैं?

उत्तर : सामूहिक विनोद-प्रियता।

प्रश्न : आपकी सबसे बड़ी गलती?

उत्तर : यह बात मैं लोगों पर छोड़ देती हूं।

प्रश्न : आपका खुशी का सपना क्या है?

उत्तर : जो जिंदगी हम जीते हैं, खुशी उसी में होती है -- सपनों में नहीं।

प्रश्न : आपके लिए सबसे बड़ी त्रासदी क्या होगी?

उत्तर : जब भारत की स्वतंत्रता और अखंडता को कोई आघात पहुँचे।

प्रश्न : आप क्या बनना चाहती हैं?

उत्तर : जो मैं हूं।

प्रश्न : आपका सबसे प्रिय रंग क्या है?

उत्तर : यह तो मनः स्थिति,मौसम और परिस्थिति पर निर्भर करता है। लेकिन मैं प्रत्येक रंग की कुछ छटाओं को साथ ही पंसद और नापंसद भी करती हूँ। जिन्हें मैं नापसंद करती हूँ, वे दूसरे रंगों के साथ मिलकर अच्छे लगते हैं, लेकिन मैं मूलतः पतझड़ के रंग-हरा, गहरा लाल, और गिरते पत्तों के सुनहरेपन को पसंद करती हूँ।

प्रश्न : आपका प्रिय फूल कौन-सा है?

उत्तर : पहाड़ों पर खिलनेवाला बसंती फूल।

प्रश्न : आपको पक्षियों में कौन-सा पक्षी प्रिय है?

उत्तर : रेडस्टार्ट ... सफेद टोंपीवाले।

प्रश्न : आपका प्रिय लेखक कौन-सा है?

उत्तर : लेखक और कवि मित्रों जैसे ही हैं। बहुतों से मुझे एकदम नई चीज मिलती है। जिसका अपने ढंग का असर पड़ता है।

प्रश्न : आपका प्रिय गीतकार कौन-सा है?

उत्तर : 16वीं शताब्दी में हुई कश्मीर की एक रानी – हव्वा खातून।

प्रश्न : आपके प्रिय नाम?

उत्तर : जो आदमी के अनुरूप हों।

प्रश्न : आपका वह क्या है, जिसे सबसे ज्यादा नापंसद करती हैं?

उत्तर : संकीर्ण मानसिकता और घृणा का दृष्टिकोण। आडम्बर और क्षुद्रता।

प्रश्न : किस ऐतिहासिक चरित्र को आप ज्यादा घृणा की दृष्टि से देखती हैं?

उत्तर : हिटलर – जिसके पागलपन भरे क्रूर कृत्यों को हमने देखा है।

प्रश्न : किस सैन्य कार्यवाई का आप सबसे ज्यादा सम्मान करती हैं?

उत्तर : अशोक और अकबर की। दोनों ही सैन्य साहस और विजय के लिए विख्यात। सबसे बड़ी बात यह है कि ये बुद्धिमान और दूरदृष्टि पूर्ण और परिपक्व थे। उन्होंने धैर्य और सद्भाव का संदेश जन-जन तक पहुँचाया।

प्रश्न : आप किस सुधार का सबसे ज्यादा आदर करती हैं?

उत्तर : जिससे जरूरतमंद लोगों को मदद मिलती है।

प्रश्न : आप कौन-सा प्राकृतिक गुण प्राप्त करना चाहेंगी?

उत्तर : मधुर आवाज।

प्रश्न : आप कैसे मरना चाहेंगी?

उत्तर : सम्मान के साथ और जिससे मेरे चाहने वालों को कम से कम कष्ट हो।

प्रश्न : आपकी मौजूदा मनः स्थिति क्या है?
उत्तर : दुनिया के हालात से दुखी।
प्रश्न : आपका समाधान?
उत्तर : कोई नहीं हैं।

□□

ऊपर दिए गए प्रश्न और उत्तरों के बीच इंदिरा गांधी का मानवीय और राजनीतिज्ञ चरित्र पूरी तरह उजागर हुआ है। उनका हर जवाब पढ़ने पर पता चल जाता है कि वह उसी साफ बोलने की आदत से भरा है, जिसके लिए वह जीवन भर दूसरों को प्रसन्न भी करती रहीं। कुछ लोग चिढ़ते भी रहे। पर बिना लागलपेट वाली इस ऐतिहासिक महिला के स्वभाव और गुणों में तिलमात्र अंतर नहीं पड़ा।

श्रीमती इंदिरा गांधी को अपने जीवन से लेकर राजनीति और कर्मक्षेत्र तक में जिस विरोध और तकलीफों भरे हालातों का सामना करना पड़ा, बहुत कम, शायद नहीं के बराबर लोगों को करना पड़ता होगा।

एक युवा लेखिका ने बहुत सहजता के साथ उनका शब्दचित्र खींचा है। वह लिखती हैं – उथली दृष्टि से देखने पर इंदिरा जी का जीवन ओझल हो जाता है। कम से कम जीवन की सच्चाई ओझल हो जाती है। कारण यह है कि इंदिरा गांधी का प्रधानमंत्री के रूप में इतना विशाल वटवृक्ष जैसा प्रभाव फैला हुआ है कि उसमें केवल इंदिरा जी को कम लोग ही हैं जो देख पाते हैं ... वैसे देखा जाए तो असल इंदिरा वह हैं जो केवल इंदिरा के रूप में सारे जीवन केवल सहनशील बनी रही हैं .. तरुणावस्था में ही मातृहीनता का दुख उन्हें (इंदिरा को) झेलना पड़ा, युवा आयु में वैधव्य का अंधेरा उनके जीवन पर छाया, पिता की सेवा के बहाने देश की सेवा करती रहीं। इंदिरा के जीवन में उनके पिता नेहरू जी ही थे, जिनमें वह माता की ममता और सुरक्षा का

अहसास करती थीं। पर वह भी एक दिन छोड़कर चले गए। बच्चों के साथ अकेली रह गईं इंदिरा, और तब भी विषमताओं ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उन्हीं के दल के बुजुर्ग लोग उन पर राजनीतिक प्रहार करने लगे। इंदिरा सब कुछ धैर्य और साहस से सहती चली गईं ... इंदिरा यानी केवल सहनशीलता और लगन ... पर इस सहनशीलता भरे व्यक्तित्व में इंदिरा जी का वह क्रांतिकारी व्यक्तित्व शामिल नहीं है जो उनसे पल भर में उन्हें क्या करना चाहिए – यह निर्णय करवा लेता था।

निर्णय करने की शक्ति, विशेषकर तुरंत निर्णय लेने की शक्ति बहुत कम लोगों में होती है। उन परिस्थितियों के मामले में तो बिल्कुल ही कठिन होती है, जबकि आदमी को अपने साथ-साथ अनेक लोगों के बारे में निर्णय लेना पड़े। ऐसे मौकों पर अक्सर बड़े से बड़े साहसी लोग भी हिचकिचा जाते हैं। इंदिरा गांधी इस मामले में अद्‌भुत थीं। तुरंत निर्णय करने और उसे लागू कर देने की जो आश्चर्यजनक शक्ति उनके भीतर थी, संभवतः उसी के कारण उन्होंने कठिन से कठिन मौकों पर विजय हासिल की ...

निर्णय करने की यह शक्ति लोगों ने बहुत तरह से देखी है। भारत की विकसित स्थिति में उन्होंने जो राजनीतिक निर्णय लिए और उन्हें कारगर ढंग से सफल कर दिखाया – वह तो बाद की बातें हैं, सैकड़ों लोगों की जानी-समझी हैं, पर जिन लोगों ने इंदिरा की किशोर और तरुण आयु को देखा है, व्यक्तित्व को उस समय परखा है – उनके अनुसार यह निर्णायक शक्ति उनमें बचपन से ही मौजूद थी।

एक घटना का बयान करना उचित है। वही यह बतलाने में काफी है कि इंदिरा गांधी ने किस तत्परता और तेजी के साथ बैंकों के राष्ट्रीयकरण, राजाओं के प्रिवीपर्स आदि समाप्त करने के

फैसले किए – वे अचानक नहीं थे। बल्कि उस व्यक्तित्व का ही हिस्सा था, जो बचपन से उन्होंने पाया था।

□□

सुश्री कलावती मिश्र का एक संस्मरण है। वह दौर है 1942 के आंदोलन का। ''भारत छोड़ो' आंदोलन में डी. आई. आर. की दफा 302 के अंतर्गत कलावती जी को भी गिरफ्तार किया गया था।

कलावती ने इंदिरा जी के मानवीय पक्ष की कोमलता के साथ-साथ उनके निश्चयात्मक पक्ष का भी वर्णन किया है। वह लिखती हैं –

'' ... जब मैं नैनी सेंट्रल जेल में दाखिल हुई और जेल के दफ्तर में मेरे नाम की लिखापढ़ी हो ही रही थी कि किसी जमादारिन ने आकर जनानी जेल में बता दिया कि एक महिला अपनी दो माह की बच्ची के साथ हाथ में तिरंगा झंडा लिए बैरक में आ रही है। सुनते ही इंदिरा जी, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित और चिता मालवीय फाटक पर आ गईं। भीतर घुसते ही इंदिरा जी ने मेरी बच्ची को गोद में उठा लिया और विजयलक्ष्मी जी ने छाती से लगा लिया। इन्हीं लोगों ने मेरा बिस्तरा लगाया और मुझे खाना खिलाया। मेरी बच्ची इंदिरा जी से इतनी हिल-मिल गई कि वह उन्हीं के पास, उनकी बैरक में ही रहने लगी, केवल दूध पिलाने के समय वे जमादारिन के हाथ उसे मेरे पास भेजती थीं, और घड़ी देखकर उसे वापस बुला लेती थीं। रात में जब जरूरत होती, जमादारिन के हाथ बच्ची को भेजती थीं, जो बैरक के सींखचों के भीतर से मुझे दे देती थीं और मैं उसे दूध पिलाकर वापस भेज देती थी। मेरे और मेरी बच्ची के खाने पीने और पहनने का पूरा प्रबंध इंदिरा जी आनंद भवन से कराती थीं। छह महीने की होने पर उन्होंने बच्ची का अन्नप्रासन संस्कार बड़ी धूमधाम से किया। नाच-गाना और बजाने का कार्यक्रम चलता

रहा और चांदी की चम्मच और कटोरी में उसे खीर चटायी। वह कटोरी और चम्मच अभी तक मेरे पास है। उनमें विजयलक्ष्मी पंडित, पूर्णिमा बनर्जी और इंदिरा जी का नाम लिखा हुआ है। एक बार चेचक का टीका लगाने के कारण मेरी बच्ची की हालत बहुत खराब हो गई। वह बेहोश हो गई। मुझे तो बहलाकर उन्होंने दूसरी तरफ भेज दिया और उसके इलाज के लिए रिपोर्ट लगवाकर डाक्टर को बुलवाकर ठीक से दवा-दारू करवाई। जब तक वह होश में नहीं आई, वे परेशान रहीं। इतने बड़े परिवार की बेटी पर बराबर बहिन-का सा बर्ताव रहा। कभी ऊँच-नीच का विचार उनके दिल में नहीं आया। दिन में वह मुझे अंग्रेजी पढ़ातीं, साथ-साथ खेलते-खाते पीते जेल के दिन बीत रहे थे।

" ... जेल में हम लोगों को कपड़ा धोने का साबुन बहुत कम मिलता था। जेल का खाना भी बहुत रद्दी होता था। एक रोज इंदिरा जी ने कहा – "कल परेड है। तुम सब लोग गंदे कपड़े पहनकर, परेड में खड़ी होओ और खाना भी मत लो ..."

"हम लोगों ने वैसा ही किया।" जेलर ने पूछा, तुम लोग गंदे कपड़े क्यों पहने हो?"

कहा गया कि साबुन कम मिला है। इस पर वह बहुत बिगड़ा और कहने लगा कि घर में तो तुम लोगों के यहाँ साबुनों का पहाड़ लगा रहता होगा। बस फिर क्या था ... लड़ाई छिड़ गई। खाना नहीं लिया गया और तसला पीटा जाने लगा। सुपरिन्टेंडेंट, जेल और जेल के अन्य अफसर बहुत घबराए और दौड़-धूप होने लगी। इंदिरा जी ने कहा – "जब तक अच्छे व्यवहार का वादा नहीं होता, हम लोग यही करती रहेंगी ... इन्हें अच्छा खाना मिलना चाहिए और साबुन भी उचित मात्रा में दिया जाना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि ये सब महिलाएँ भूखहड़ताल कर रही हैं। यदि एक को भी कुछ हो गया तो आप

लोगों की खैरियत नहीं''। ''बहुत देर के बाद सुलह हुई और साबुन और खाना ठीक से मिलने लगा ...''

इसी निर्णयक शक्ति को लोगों ने बाद में देखा। मुझे लगता है कि उस समय यह शक्ति अंकुरित हुई थी फिर वृक्ष बनी और इस तरह फैल गई कि इसकी जड़ों से हिन्दुस्तान के कई राजनैतिक फैसलों की धरती भरी पड़ी है।

युद्ध के समय किए गए निर्णय, विदेश यात्राओं के समय किए गए फैसले,अनेक राज्यों में हो रही राजनीतिक खलबलियों के समय लिए गए फैसले, और हर फैसला पल भर में ... यह उनके व्यक्तित्व का हिस्सा था...

पर व्यक्तित्व की सम्पूर्णता उन्होंने अतिरिक्त शक्तियों से भी प्राप्त की थी। उनमें काम करने की आश्चर्यजनक शक्ति और गति थी। इसी गति और शक्ति के आधार पर वह निरंतर काम करती रहीं। प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार पी. डी. टंडन ने अपने एक संस्मरण में लिखा है – ''एक दिन मैं उनके साथ हवाई जहाज से दिल्ली से चंडीगढ़ गया। रह-रहकर जवाहरलाल जी की याद आती थी और हैरत होती थी कि पंडित जी के रवैये को इंदिरा जी ने कितनी खूबसूरती और सहूलियत से अपनाया है। जैसे पंडित जी काम करते थे, वैसे इनके भी तरीके हैं। उनका आत्मसंयम और आत्म नियंत्रण देखकर हैरत होती है। ये तो अपने गुस्से को भी ज्यादातर जब्त कर लेती हैं। तरह-तरह के कामों को किस तरह निभाती हैं, यह देखकर बड़ी खुशी और आश्चर्य होता है।

''हवाई जहाज की उस यात्रा में एक साहब ने कांग्रेस के किसी खास उम्मीदवार के बारे में प्रधानमंत्री से बात की और इंदिरा जी ने उनकी बात का जवाब दिया। दूसरे ने किसी सरकारी समस्या की चर्चा की, उस पर भी उन्होंने विस्तार से विचार किया। तीसरे ने ''परिवार नियोजन'' की प्रगति पर बातचीत

की। उसमें भी उन्होंने हिस्सा लिया। एक साहब ने फूलपुर के चुनाव के बारे में पूछा, और उनकी राय ली। एक लेखक ने प्लेन में ही इंदिरा जी को अपनी किताब भेंट की । उसे भी उन्होंने अच्छी तरह से देखा। जब उसके लिए भूमिका लिखने की बात की तो उसका भी उन्होंने वादा किया। कुछ सरकारी कागज उनके सामने लाए गए, उन पर उन्होंने नजर डाली और कुछ लिखा। बीच में उन्होंने अपने सचिव को बुलाकर यह कह दिया कि गुलाबों के जो गुच्छे प्लेन में रखे हैं, वे पानी में भिगो दिए जाएँ जिससे घर पहुँचते-पहुँचते सूख न जाएँ। यह सब पच्चीस मिनट के अंदर-अंदर हुआ ...

□□

''गुस्से को दबाना, बिना जरूरत कोई बात न कहना, दूसरे के पेट की बात निकालना, अपने विचारों का जल्दी अंदाजा न लगने देना, पैंतरेबाजी के विभिन्न दाँव-पेंचों को समझना, और उनके अनुसार अपना कदम उठाना, झगड़ालू आदमियों के साथ कार्य करना, लोगों के शरारती इरादों को समझना,और उनका डटकर मुकाबला करना, साजिश करनेवालों को ठीक कर देना, ये सब उन्होंने कैसे सीखा? ... क्या यह जवाहरलाल का जादू है या मनुष्य की छिपी हुई शक्तियों का चमत्कार है?...

□□

जिन्होंने इंदिरा जी को पास से देखा, जाना है — वे जानते हैं कि यह सब सचमुच शक्ति का चमत्कार ही लगता था। कुछ ऐसा अद्भुत चमत्कार जिसके पास तक पहुँच पाना सामान्य बुद्धि में अचानक नहीं आ पाता। आदमी केवल इतना ही सोच पाता है कि यह सब चमत्कार है ...

किन्तु ये सारे चमत्कार इंदिरा जी ने निरंतर अपने भीतर की शक्तियों को जागृत करके ही प्राप्त किए। एक तरह की यौगिक स्थिति थी यह। वह धार्मिक ग्रंथों का भी खूब

पठन-पाठन करती थीं। योग में उनकी निष्ठा थी, गीता उन्होंने सुनी ही नहीं, उसका कुछ अंश जीवन में उतारने का प्रयत्न भी किया था। उन लेखकों, कलाकारों को सदा ही अपने करीब रखने का प्रयत्न किया जो इस तरह के गूढ़ विषयों को जानते थे। विचारमन्थन करते थे और निष्कर्ष निकाला करते थे। इस अध्ययन, चिंतन-मनन और सत्संग से ही उन्होंने अपनी साधारण मानवीय शक्तियों में असाधारणता पैदा कर ली थी। वह स्वयं कहा करती थीं कि मनुष्य चाहे तो बहुत कुछ कर सकता है और बहुत कुछ अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए। जन-जनहिताय कितना कुछ किया जा सकता है – यह भी उन्होंने सिद्ध कर दिखाया था।

बहुत से लोगों ने उनके स्वभाव में एक अतिरिक्त विशेषता देखी। सभी की एकमत राय यह है कि इंदिरा गांधी ऐसी ही दो टूक बात करने की आदी थीं। मन के भीतर जो कुछ है या जो कुछ उन्हें करना है यह पल भर में साफ-साफ, निधड़क व्यक्त कर देना उनका स्वभाव था।

एक संस्मरण में मुनि नगराज जी ने लिखा है –

"...अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी रायपुर (मध्यप्रदेश) में वर्षावास कर रहे थे। "अग्नि परीक्षा" पुस्तक को लेकर एक विवाद खड़ा हो गया। स्थिति गंभीर बन गई। कभी आगजनी तो कभी पत्थरबाजी। उन दिनों हमें इंदिरा जी से पुनः पुनः मिलना पड़ा। आचार्य श्री तुलसी के प्रति उनके मन में आदर का भाव था। वे उनकी सार्वजनिक भावनाओं और प्रवृत्तियों से भी परिचित थीं। अस्तु जितनी बार बातें हुईं, हमने 2-4 कामों के लिए उनसे प्रार्थना की। जिन-जिन कार्यों के लिए उन्होंने "हाँ" भरी, वे-वे कार्य ठीक समय पर उन्होंने सम्पन्न किए। उस संदर्भ में उन्हें अनेक तात्कालिक निर्णय लेने पड़े। तात्कालिक निर्देश देने पड़े। जिस तत्परता से उन्होंने वे सारे कार्य किए वह हमारी

आशा व कल्पना से भी परे की बात थी। कभी उन्होंने औपचारिक आश्वासन नहीं दिया। जो कार्य न होने वाला था, उसके लिए उन्होंने तत्काल स्पष्ट कहा।

''एक बार प्रातः 9 बजे के वार्तालाप में मैंने कहा – ''यह कार्य मध्याह्न में 12 बजे तक हो जाए तो अच्छा रहे। उन्होंने अविलंब कहा – ''मुनिजी, यह कार्य दो बजे ही हो सकेगा –'' और वह 2 बजे हो भी गया''।

मुनि नगराज जी के संस्मरण से पता चलता है – ''भारी समस्याओं का इंदिरा जी ने सीधा मुकाबला किया है और उनका दो टूक फैसला भी किया है''।

□□

12 दिसम्बर 1971 को दिए गए उनके एक भाषण का यह अंश अनजाने ही सही, पर उनकी निर्णायक शक्ति और दो टूक बातचीत के स्वभाव को ही उजागर करता है। उस भाषण में उन्होंने गरीबी, संप्रदायवाद और बेकारी से लड़ने की अपील करते हुए जनता को संबोधित किया था –

''... मैं फिर कहती हूँ कि चाहे हम कमजोर हैं, हमारी फौजें इतनी नहीं हैं कि दुनिया की जो बड़ी-बड़ी शक्तियाँ हैं, जो यूरोप के देशों को भी हिला देती हैं, उनका हम मुकाबला कर सकें। उनके मुकाबले में हम कुछ भी नहीं हैं। हमारे पास वे अस्त्र भी नहीं हैं, उतना रुपया भी नहीं है, वह साहस भी नहीं है, वे उद्योग भी नहीं हैं लेकिन हमारे पास भारत की आत्मा है। हमारे पास भारत की सभ्यता है, हमारे पास सच्चाई है, न्याय है, और हम दुनिया को दिखाएँगे कि चाहे दूसरी, बाहर की शक्तियाँ हमारे खिलाफ लगी हों, लेकिन यह जो मनुष्य जाति की एक भीतरी चीज है – जिसके लिए आज भारत खड़ा है, उसको कोई शक्ति दुनिया में ऐसी नहीं है, जो दबा सके या हिला सके। याद रखिए कि इसके लिए एक बहुत बड़ी जबरदस्त हिम्मत चाहिए।

नारों से काम नहीं बनेगा। यह कहना कि किसी देश को नष्ट करेंगे या कि ख्वामख्वाह और लोगों को मारें, या दुख फैलाएँ, यह हिम्मत की बात नहीं है। हिम्मत की बात है कि अपने असूलों पर दृढ़ता से खड़े रहें। और उसको हमें देखना है कि हमारे असूल क्या हैं?..."

इसी भाषण में वह भारत के आदर्शों की व्याख्या करती हुई अपने उन सिद्धातों के बारे में भी बताती हैं जिनके लिए वे सारे जीवन संघर्षरत रहीं। वे कहती हैं – "हमारा पहला असूल है – लोकतंत्र ... लोकतंत्र कैसे सच्चा बन सकता है? कैसे लोगों के लिए माने रख सकता है? सब लोग, जो इस देश में रहते हैं, उनको बराबर के अधिकार मिलें, चाहे वे किसी कौम के हों, किसी धर्म के हों, किसी भाषा के हों, सब धर्मों के लोगों को बराबर के अधिकार मिलें। यह हमारा एक बहुत बड़ा असूल है। दूसरा है– कि उस समय तक लोकतंत्र दृढ़ नहीं हो सकता जब तक कि गरीबी कम न हो, चाहे अनपढ़ हों, चाहे एक वर्ग के हों, चाहे दूसरे वर्ग के हों, वह अंतर जब तक कम न हो, यह दोनों बातें हम एक रास्ते पर लेकर चलेंगे तो हमारी विजय होगी। खाली जमीन लेने से विजय नहीं होती।

□□

विजय .. और "विजयी" ...

अब तक संसार के इतिहास में विजय और विजयी के इस लक्ष्य के चरित्र का इससे बढ़िया और शांतिपूर्ण उदाहरण शायद ही कहीं मिलेगा। मनुष्य की विजय धरती को पा लेने भर से नहीं, बल्कि मानवीय अधिकारों को देने और पाने से होती है। यही दर्शन था जिस पर जीवन भर इंदिरा गांधी चलती रहीं। यही सच्ची भारतीय आत्मा थी, जिसका पुनर्जागरण करने के लिए शांति शब्द की पर्यायवाची बनकर वह जीती रहीं और अपने प्राण भी दे दिए।

यही नीति थी, जिसे लेकर उन्होंने भारत का दूर-दूर तक झंडा फहराया। उसे समूचे संसार में आदर्श का उदाहरण बनाया। यही विचार थे, जिन्हें महात्मा गांधी के बाद जीवन और कर्म के रूप में सारी विश्व-राजनीति के पटल पर इंदिरा गांधी ने चित्रित किया।

इसी भाषण में उन्होंने व्यक्ति और राष्ट्र के सुख-दुखों का विवेचन करते हुए देशवासियों को सलाह दी थी –

'' ... व्यक्तियों के जीवन में, और राष्ट्र के जीवन में बहुत से दुख आते हैं। परीक्षा यह है कि उस दुख से घबरा न जाएँ, दब न जाएँ, न डर जाएँ, इन कठिनाइयों का और खतरों का हम हिम्मत से सामना करेंगे हमारे आगे बढ़ने के रास्ते में ऐसी रुकावटें आती हैं तो हम उनको रुकावट नहीं मानेंगे ... यदि रुकावटें आती हैं तो सबको कंधे से कंधा मिलाकर उस रुकावट को हटाना है।

''श्रीमती गांधी तीव्रगति से जीवन में चलने में विश्वास रखती थीं, जिन लोगों ने उन्हें चलते, काम करते हुए या किसी समस्या पर विचारते या निर्णय करते हुए देखा है, वे जानते हैं कि उन्हें किसी भी तरह की ढुलमुल या कि ढीलीढाली कार्यपद्धति में कभी विश्वास नहीं था। शायद यही कारण था कि देश का सामान्य जन, विशेषकर विभिन्न प्रांतों की राज्य सरकारें, अधिकारी और कर्मचारी उनकी गति के अनुसार अपने आपको ढाल नहीं पाए। उनकी तरह काम न कर पाने, व्यवहार कर्म में दौड़ न पाने, प्रगति के प्रति उस तरह समर्पित न होने की भावना ने ही श्रीमती गांधी के प्रति उनके मन में अजीब-सी बेरुखी भर दी। इस बेरुखी ने प्रशासन ही नहीं, समूची व्यवस्था को उसकी महज चाल से भी अधिक ढीला कर दिया। अफसरशाही, नौकरशाही, और व्यक्तिवाद का बोलबाला बिखरने लगा।

जैसा कि होना था, और जैसा श्रीमती गांधी का स्वभाव भी

था, उन्होंने सख्ती बरतनी शुरू की। इस सख्ती के नतीजे होने तो अच्छे चाहिए थे, किन्तु उल्टे निकलने लगे। जो लोग काम नहीं करना चाहते थे या स्वभावत: शासकीय शक्ति या राजनीतिक शक्ति को देश के लिए नहीं, निजी स्वार्थों के लिए उपयोग में लाने के आदी हो चुके थे, वे भड़के,इंदिरा जी के विरुद्ध अजब-सा वातावरण बनाने में जुट गए। इस वातावरण ने सभी स्तरों पर अराजकता सी पैदा करना शुरू कर दिया।

□□

रायबरेली से श्रीमती गांधी ने अपने मुख्य प्रतिद्वंदी श्री राजनारायण के विरुद्ध चुनाव में विजय हासिल की थी। श्री राजनारायण ने इलाहाबाद हाईकोर्ट में एक याचिका दाखिल कर रखी थी। इस याचिका पर 12 जून 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने निर्णय देते हुए श्रीमती इंदिरा गांधी का चुनाव रद्द कर दिया। यही नहीं इस फैसले में इंदिरा जी को अवैध तरीकों के उपयोग का दोषी ठहराते हुए आगामी छह बरसों तक चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य भी करार दे दिया ...

विरोधी दलों का आंदोलन चल ही रहा था। इस आंदोलन को अचानक इस फैसले ने तूफान की शक्ल दे दी और इस तूफान में लाखों लोग बह पड़े। वातावरण कुछ ऐसा बना कि समूची राजनीतिक हवा ही बदल गई ... आंदोलन के तूफान में असामाजिक तत्व भी हाथ बँटाने लगे। नतीजा यह हुआ कि सब ओर गड़बड़ी सी फैलने लगी। इंदिरा गांधी ने आपातकाल की घोषणा कर दी ... उन्होंने हाईकोर्ट के निर्णय के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में अपील दाखिल की, किन्तु प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र नहीं दिया ...

विरोधी इस कदम की आलोचना कर रहे थे। हालांकि श्रीमती गांधी का पक्ष यह था कि समूचे जनतंत्री संविधान के अनुसार उन्होंने न्याय के सर्वोच्च न्यायालय से निर्णय मांगा है

और जब तक निर्णय नहीं हो जाता, तब तक वह त्यागपत्र क्यों दें?...

बहरहाल सारे देश में अजब-सी खलबली मची हुई थी। आंदोलन कभी आम आदमी की बुनियादी मांगों को लेकर प्रारंभ हुआ था, किन्तु अनजाने या अनचाहे ही वह किसी तरह मोड़ बदल कर केवल इंदिरा गांधी से पदत्याग का आंदोलन बन गया। इतना निश्चित है कि तूफान पहले से ज्यादा उग्र हो गया था।

□□

बहुतेक बाहरी खतरों से इंदिरा कभी सहमी-घबराई नहीं थीं। वे अदम्य साहसी थीं। इस बार भी चरम साहस से काम लिया उन्होंने। आपातकाल के साथ ही बड़ी संख्या में गिरफ्तारियाँ प्रारंभ हुईं। इंदिरा जी को लग रहा था कि देश के इस तूफान का लाभ पड़ौस के ऐसे देश उठा सकते हैं, जो मन ही मन भारत की प्रगति से जलते हैं। बहुतेक लोगों ने आपातकाल की घोषणा का यही अर्थ लगाया है, किन्तु कुछ औरों के अनुसार वह कुछ और ही अर्थ रखता था। बहरहाल राजनीतिक विवेचनों, विवादों में न जाकर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि आपातकाल किसी न किसी रूप में भारतीय राजनीति को झकझोरता जरूर रहा। इस बीच नौकरशाहों की भी बन आई थी। सुधार कार्यक्रमों और व्यवस्था के नाम पर कुछ लोगों ने मनमानियाँ प्रारंभ कर दीं। सारी बदनामी आने लगी प्रधानमंत्री और उनके सचिवालय पर।

साधारण जन और इंदिरा जी के बीच इस दौर में एक खाई पैदा हो गई। नतीजा यह हुआ कि लोग अपनी-अपनी तरह, अपने-अपने निर्णय लेने लगे।

18 फरवरी 1977 को आपातकालीन आम चुनावों की घोषणा कर दी गई। इस घोषणा का सभी स्तरों पर स्वागत हुआ। हमेशा की तरह एक बार फिर भारतीय जनता की अदालत में

इंदिरा जी न्याय माँगने गईं। वे जनतंत्र में पूरी आस्था रखती थीं और उन्हें विश्वास था कि जनता से बड़ा न्यायधीश कोई नहीं हो सकता।

इस बार जनता ने निर्णय उनके विरुद्ध दिया। कांग्रेस को ज़बरदस्त हार खानी पड़ी। इन्दिरा जी ने इस निर्णय के अनुसार 22 मार्च 1977 को विरोधी दलों के संयुक्त दल, जनता पार्टी की जय का स्वागत किया और अपना त्यागपत्र सौंप दिया।

अपने समर्थकों और विरोधियों के बीच इंदिरा जी के साहसी, कार्यकुशल, और प्रखर राजनीतिक गुणों से सम्पन्न व्यक्तित्व को सदा ही सराहा गया। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी वह कभी साहस नहीं छोड़ती थीं। न ही उनके निर्णय की शक्ति उससे प्रभावित होती थी। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह एक बार जो कह देतीं, कार्यरूप में उसे परिणत कर देने के लिए जुट जाया करती थीं।

जनता शासन के दौरान जिन लोगों ने इंदिरा जी को एक ज़बरदस्त भीतरी राजनीतिक तूफान से जूझते देखा है, वे जानते हैं कि उस तूफान को लेकर दूसरे परेशान थे, पर इंदिरा जी ने कभी साहस नहीं खोया। न ही अपने विचारों को बदला। 1980 में दोबारा आम चुनाव हुए। जिस भारतीय जनमत ने उन्हें अस्वीकार कर दिया था, उसी ने आश्चर्यजनक रूप से उनके हाथों में अपना सम्पूर्ण विश्वास, बहुमत के साथ सौंप दिया। वे पुनः उसी गति से सेवा में जुट गईं।

अधिकतर लोगों की यही राय है कि श्रीमती गांधी अपने चेहरे के भावों को आश्चर्यजनक रूप से दबाए रखती थीं। उनसे बातचीत करते हुए, या किसी स्थिति को देखते समझते हुए सहसा यह समझा नहीं जा सकता था कि वह क्या सोच रही हैं या क्या कहेंगी। क्या निर्णय लेंगी। पर उनके विविध समस्याओं से भरे जीवन और कार्यों के बीच एक स्थिति ऐसी थी, जिसे लेकर

निश्चयपूर्वक कहा जा सकता था कि वह क्या सोच रही हैं, क्या कहेंगी या क्या करने वाली हैं? यह स्थिति होती थी, उस समय जब उनके पास किसी गरीब की बात पहुँच जाए या वह किसी गरीब पिछड़े हुए तबके या किसानों के बीच हों।

ऐसे मौकों पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता था कि वह एक ही फैसला करेंगी और यह फैसला 100 प्रतिशत गरीबी और उसकी बेबसी हटाने के लिए होगा।

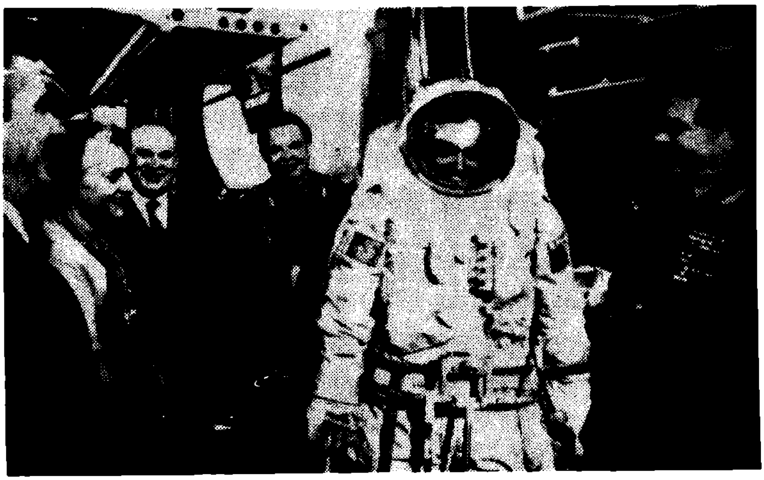
भारतीय स्वतंत्रता के बाद संभवतः वह इकलौती ऐसी सक्रिय राजनेता रहीं जो गरीबी से देश को मुक्त करवाने के लिए प्रतिक्षण लगी रहीं। दूर दराज भारत के आदिवासियों और पिछड़े हुए ग्रामों में पहुँचकर उन्होंने सामान्य जन के जीवन को करीबीतौर पर देखा। उनके कार्यकाल में पिछड़े वर्गों और गरीबी की रेखा से नीचे जा पहुँचे लोगों के लिए जितने कार्यक्रम चलाए गए, उतने किसी समय और किसी के कार्यकाल में नहीं चलाए गए।

इस मामले में तनिक भी उपेक्षा करने वाले अधिकारी को उन्होंने कभी नहीं बख्शा। उन कांग्रेसी नेताओं को भी उन्होंने पार्टी से दूर रखने में परहेज नहीं किया, जो जातिवाद के समर्थक थे, अथवा जिनके मन में गरीबों के लिए हमदर्दी नहीं थी। ऐसे मौकों पर उन्हें अपने दल में ही पूँजीवाद के समर्थक ढेरों शक्तिशाली राजनेताओं का सामना करना पड़ा, पर वह कभी नहीं थकीं।

वह सामाजवादी अर्थव्यवस्था लाना चाहती थीं। जाति-पाँति, सम्प्रदायवाद, आडम्बर और भ्रष्टाचार की समाप्ति के लिए वे जीवन भर प्रयत्न करती रहीं। इसके साथ-साथ उनकी शक्ति का एक बड़ा हिस्सा भारत को आधुनिक तकनीकी ज्ञान से समृद्ध करने की दिशा में खर्च होता रहा। उन्हीं के काल में वे सारे सपने धीमे-धीमे साकार हुए जो कभी उनके पिता और भारत के प्रधानमंत्री स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने संजोए थे।

आज भारत दुनिया के विकासशील देशों में अग्रणी है। क्योंकि दो सक्रिय राजनेताओं का नेतृत्व उसने पाया।

पिता पं. जवाहरलाल ने यदि नए भारत का नक्शा बनाया तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि उस नक्शे को दुनिया की तस्वीर पर साकार किया बेटी इंदिरा गांधी ने। उनके अथक परिश्रम की ही देन है कि भारत आर्थिक रूप से तो शक्तिशाली हुआ ही, तकनीकी और वैज्ञानिक उपलब्धियों में भी वह दुनिया में एक चमकते सितारे की तरह स्वीकार किया गया।



रूस के अन्तरिक्ष प्रशिक्षण केन्द्र में

भारत की विश्वशांति के प्रति समर्पित विदेश नीति में कभी अन्तर नहीं पड़ा। यही कारण है कि वह विश्व की महाशक्तियों के बीच अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रख सका। यही कारण है कि वह विश्व में गुट-निरपेक्ष राष्ट्र का प्रतिनिधित्व कर सका। श्रीमती गांधी के नेतृत्व काल में ही विश्व की दो महाशक्तियों ने भारत को एक तीसरी महाशक्ति के

रूप में स्वीकार किया। एक तीसरी महाशक्ति के रूप में भारत ने गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों के संगठन के माध्यम से दुनिया की राजनीति को सहसा सन्तुलित किया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने संसार में सबसे पहले उपनिवेशवाद के खातमें के लिए अहिंसात्मक आंदोलन की नींव डाली थी। इस आन्दोलन ने अफ्रीका में धीमे-धीमे जोर पकड़ा। अनेक देश पूंजीवादी देशों की उपनिवेशवादी सत्ता से लगातार लड़ाई करते हुए गांधी के रास्ते से ही आजादी पाते चले गए। भारत ने सदा ही इन देशों को आगे बढ़कर हृदय से लगाया। यथाशक्ति आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सहायता दी। इसी नीति के तहत श्रीमती इन्दिरा गांधी ने अफ्रीका के अनेक देशों में चलती आई आजादी की लड़ाई को नैतिक समर्थन और सहयोग जारी रखा। अनेक देश श्रीमती गांधी की इस नीति से निरंतर असहमत भी रहे, पर उनके राजनीतिक व्यक्तित्व के सामने कभी सामने आकर उनका विरोध करने का साहस नहीं कर सके। श्रीमती गांधी के इस सहयोग की शक्ति ने ही अफ्रीका और अन्य उपनिवेशवाद के अंधड़ में फँसे देशों को शक्ति दी। बहुत हद तक उनके समर्थन ने उन्हें आजाद भी करवाया। मानवीय मूल्यों के प्रति भारतीय जनता ने भी मुक्त कंठ से उन्हें समर्थन दिया। साउथ अफ्रीका में इस समय चल रहे अफ्रीकी लोगों के अहिंसक आन्दोलन को इसी प्रजातंत्रवादी रुख ने जीवित रखा है। मनुष्य मात्र का जन्मसिद्ध अधिकार स्वतंत्रता है। ... यदि यह नारा भारत के नेता लोकमान्य तिलक ने दिया था तो इसे साकार रूप देने के लिए इंदिरा गांधी जीवनभर समर्पित रहीं।

अपने विरोधियों को भी वे पूरा मान सम्मान देती थीं, अपने एक संस्मरण में जनता पार्टी अध्यक्ष चन्द्रशेखर जी कहते हैं कि सन् 1965 से लेकर 1975 तक उन्हें ऐसा कोई समय याद नहीं है, जबकि वह प्रधानमंत्री से मिलने गए हों और उन्हें 10 मिनट से

अधिक इन्तजार करना पड़ा हो। हालांकि सम्बन्धों में बहुत से उतार चढ़ाव आते रहते थे। भले ही वह उनके आफिस में पहुंचे हों, या निवास स्थान पर,इन्दिरा जी 10 मिनट के भीतर-भीतर उन्हें भेंट के लिए बुला लिया करती थीं।

जब उन्हें नजरबंद कर दिया गया था उन्हें यह समाचार भी दिया गया कि श्रीमती इंदिरा गांधी उनसे मिलना चाहती हैं। चन्द्रशेखर ने नाहीं कर दी। इस घटना के एक दिन बाद ही आम चुनावों की घोषणा हो गई। चन्द्रशेखर ने कहलवाया था कि जिस दिन चुनाव परिणामों की घोषणा होगी, परिणाम भले ही कुछ निकलें, पर वह उनसे मिलने अवश्य पहुँच जाएंगे।

परिणाम निकलने के बाद चन्द्रशेखर उनसे मिलने गए। वह लिखते हैं कि वे दोतरफा संकोच से घिरे रहे। 10 मिनट तक दोनों के बीच कोई बातचीत ही नहीं हुई। फिर चन्द्रशेखर ने ही खामेशी तोड़ी। पूछा, 'कि वह कैसी हैं'। वह बोलीं – 'मैं ठीक हूँ, आप कैसे हैं, और आगे वे लिखते हैं–

" ... इसके बाद जो बातचीत हुई वह व्यक्तिगत प्रकृति की थी। इसका मैं रहस्योद्घाटन नहीं करूँगा। लेकिन वे एक वीर महिला थीं। मैं इसके लिए उनकी सराहना करता हूँ। इसी बीच मेरी हड्डी मैं चोट आई और मैं आल इंडिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट में भर्ती कराया गया। सबसे पहले श्रीमती गांधी ही थीं जो मुझसे मिलने पहुँची।

"जब जनता राज आया और उनके विरुद्ध मुकद्दमे चले और उन्हें जेल भेजा जा रहा था मैंने अपने साथियों को यह समझाने की भरसक कोशिश की थी कि यह सब अच्छा नहीं है। ... मैं इस बात के पक्ष में तो हूँ कि कानून अपने रास्ते चले, पर सरकारी ताकत का उपयोग व्यक्तिगत बदले की भावना के लिए नहीं करना चाहिए"।

इंदिरा जी को बच्चों से अगाध प्रेम था। जब आनंद भवन में

रहती थीं तब भी वहाँ के घरेलू काम करने वाले नौकरों और उनके परिवार के प्रति पूरी दया-ममता,स्नेह रखती थीं। एक बार वहाँ के एक कर्मचारी की पत्नी की मृत्यु हो गई। उसके एक छोटा बच्चा था। बच्चे के पालन पोषण को लेकर इंदिरा जी काफी चिन्तित रहीं। उसे ठीक स दूध मिल रहा है कि नहीं,उसकी देखभाल भली प्रकार होती रहे, इसके लिए उन्होंने सारे बंदोबस्त किए। कर्त्तव्य समझकर नहीं मन के स्नेह वश होकर।

बच्चों में वे भारत के भावी नागरिकों की तस्वीर देखती थीं। उनकी कोई भी चुनाव सभा हो, कोई भी टूर हो, बच्चे उसमें सबसे आगे रहते थे। वे हमेशा उन्हें प्रोत्साहित करती थीं। किसी के अच्छे काम के लिए उसकी पीठ थपथपा देना, किसी को देख कर मुस्करा देना, किसी के गले में फूलों की माला डाल देना,यह सब कार्य उन्हें बच्चों के मन तक पहुँचा देते थे। मालाएँ तो वे विशेष रूप से बच्चों के लिए ही रखती थीं। उनसे ऐसे बातें करतीं जैसे वे उनके सबसे बड़े हितकारी और सहयोगी हों। वे सदैव कहती थीं– "हमारी आशाएँ तो जनता से हैं, लेकिन विशेष करके जो युवक पीढ़ी है, उनसे आशाएँ हैं, उम्मीदें हैं और विश्वास भी है कि वह उनको पूरा करेगी क्योंकि एक बदलती हुई दुनिया में वे नई दुनिया को समझ सकते हैं और नई दुनिया के रास्ते पर चल सकते हैं। ये रास्ते कोई आराम के रास्ते नहीं हैं। जहाँ विज्ञान के द्वारा बहुत सी नई सुविधाएँ मिल रही हैं वहाँ नई कठिनाइयाँ भी आ रही हैं। सामने आ रही उन कठिनाइयों का सामना भी युवक पीढ़ी ही कर सकती है"।

वे अक्सर कहती थीं यह नई दुनिया बच्चों की होगी, उसको बनाने में वे मदद करेंगे और इस दुनिया में रहकर इसे और भी अच्छा बनाने की कोशिश करेंगे।

इंदिरा जी का कहना था कि आज समाज में जो कमजोरी है उसका कारण है कि हर कोई समझता है कि यह जो हो रहा है वह

अलग है, विद्यार्थी पक्ष अलग है, अध्यापक पक्ष कोई अलग चीज है। किसने शिक्षा प्राप्त की किसने नहीं प्राप्त की,इसमें भी काफी अन्तर आ गया है। जो शिक्षा प्राप्त करते हैं वे समझते हैं कि किसी ऊंचे दर्जे के हो गए, यह भावना गलत है।

बड़े बच्चों के लिए इंदिरा जी का कहना था कि आज जो ज्ञान है, जानकारी है, दुनिया में वह इतनी तेजी से बढ़ रही है कि अगर केवल इसी पर हम संतुष्ट हो जाएँ कि हमने स्कूल, कालिज में या यूनिवर्सिटी में इतना सीखा है और वह हमारे लिए काफी है तो हम बहुत जल्दी पिछड़ जाएँगे। क्योंकि जो चीज हम सीखते हैं बहुत जल्दी पुरानी हो जाती है। जो चीज साईन्स में सीखते हैं वह आज बिल्कुल उलट पुलट गई है। जो हमने मैथेमेटिक्स में सीखा है उसकी जगह आज न्यू मैथेमेटिक्स है। उसमें इसमें कितना अन्तर है। इसलिए उनका कहना था "एक ट्रैनिग होती है मन की, शरीर की, जो सारे जीवन में मरते दम तक चलती है। हम विद्यार्थी ही रहें, चाहे प्रकृति से सीखें,चाहे अपने पड़ोसियों से सीखें, चाहे हर बाहर वाले से सीखें। हम यह जानें कि हम सीखते तो बहुत सी चीजें हैं, देखते तो बहुत सी चीजें हैं किन्तु क्या रखना है क्या फेंकना है, क्योंकि अगर सब चीजें हम जमा कर लेंगे तो कबाड़ जैसा हो जायेगा। जैसे गोदाम होता है। आप कभी कोई कागज मत फेंकिए, फर्नीचर जैसी कोई चीज मत फेंकिए तो कितना खण्डहर सा हो जाएगा। हम अच्छी चीज भी उसमें संभाल कर नहीं रख सकते। तो यह भी एक बहुत बड़ी चीज है कि कौन सी चीज रखनी है। इस तरह से हर एक विचार में, हर एक वस्तु में कुछ अच्छाई और कुछ बुराई है। शिक्षा में हमको यह सीखना है कि कौन सी अच्छी चीज है जो कि रखनी है। हमें एक मिश्रण करना है। जो हमारी पूरी चीज में अच्छाई है और जो आज की दुनिया में अच्छाई है दोनों को मिलाकर हम एक ऐसा रास्ता बनाएँ जो एक भारतीय रास्ता हो। जो भारत को बल दे"।

शिक्षकों के लिए उनका कहना था कि "अपनी पुरानी संस्कृति के बगैर किसी समाज की जड़ नहीं जमती और बिना जड़ के किसी को संतोष नहीं मिल सकता। जड़ें मजबूत होनी चाहिए ऊपर सूर्य की ओर बढ़नी भी चाहिए। तो यह रास्ता हमें अपने स्कूल के बच्चों को बताना है।" और अपने इन्हीं विचारों के तहत बच्चे का विकास होता रहे, इसके लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहीं।

वे दयालु महिला थीं। यही कारण है कि यदि किसी का स्वास्थ्य ठीक न हो तो वे उसके बारे में अता पता किया करतीं। टेलीफोन से जानकारी करतीं। इसी तरह पत्रोत्तर के मामले में वे बहुत चुस्त थीं, यदि साधारण व्यक्ति भी उन्हें पत्र लिखता तो उसे तुरंत ही उत्तर मिल जाया करता था। वे पढ़ती भी बहुत थीं। उन्हें पुस्तकें बहुत पसंद थीं। महापुरुषों की जीवनी, इतिहास और कविताएँ पढ़ने में उन्हें आनंद आता था।

... एक ऐसा पहलू भी श्रीमती इंदिरा गांधी के जीवन का है जो बहुत से लोगों का अनजाना रहा है। वह हास्य पसंद करती थीं। उन्हें हास्य कथाएँ सुनने में आनंद आता था। हास्य परिहास और व्यंग्य के क्षणों का आनंद वही लोग ले सकते थे जो घर या दफ्तर में उनके साथ रहते थे। एक बार के एक ऐसे ही संस्मरण का जिक्र करते हुए श्री नटवरसिंह ने बताया कि एक बार निर्गुट सम्मेलन के समय उन्हें (इंदिरा जी को) भाषण देने के पश्चात् ... धन्यवाद के कुछ शब्द कहने थे, यह सब योजनाबद्ध होता है। नपा-तुला हुआ करता है। उस दिन अचानक ही उनके दिमाग से नपे तुले शब्द निकल गये। वे मेरी तरफ मुड़ीं और बोलीं ... बताओ न कि मैं क्या बोलूँ? भाषणकर्ता किसी राष्ट्र का अध्यक्ष था बहुत लम्बा बोल रहा था। हालांकि हमने उनसे कह दिया था कि वह आधे घंटे से अधिक न बोलें, लेकिन वह तो जैसे एक बार बोले तो बोलते ही चले गए। वह भाषण चल ही रहा था कि हमारे हाथ उनकी मूल भाषण की प्रति लग गई जो 75 पेज की थी। उनके

भाषण के अंत में मैंने कागज की चिट लेकर कुछ शब्द जोडे और प्रधानमंत्री की ओर बढ़ा दिये। इसमें मैंने लिखा था कि कृपा करके विशिष्ट अध्यक्ष महोदय के लम्बे चौड़े भाषण के लिए उन्हें धन्यवाद दे दें।

''श्रीमती गांधी बोलीं ... काश। मैं उन्हें धन्यवाद दे सकती।''

''श्रीमती गांधी की विशेषता थी उनकी आश्चर्यजनक आत्मशक्ति। विदेशों की यात्राएँ तो बहुत दौड़ धूप से भरी हुई होती हैं, काम के मामले में उन्हें सुबह 6 बजे से लेकर रात को 2-2 बजे तक काम करते हुए देखा गया है। पर इतने पर भी उनके चेहरे पर थकान दिखाई नहीं देती थी। लोग थक जाया करते थे .. पर वे नहीं। 1970 की बात है। सारे दिन काम करते रहने के बाद मैंने एक बार उनसे कह दिया ... ''आज तो मैं बहुत थक गया हूँ तो फौरन उन्होंने पूछा ... आप थक गए हैं – यह कहकर आप क्या व्यक्त करना चाहते हैं? मैं तो कभी नहीं थकती।''

''मैंने जवाब दिया – ''आप कैसे थक सकती हैं? पर मैं ... दिन भर के बाद जब घर पहुँचता हूँ तो बच्चों की चीख चिल्लाहट और पत्नी की नाराजगी सुनने को मिलती है ...'' मेरी बात सुनकर वह उन्मुक्त रूप से हंसीं। सचमुच वह काम के मामले में बहुत जबरदस्त मेहनत कर सकती थीं। कुशल भी थीं। ज्यादातर कागजातों पर नज़र डालतीं। बड़ी से बड़ी फाईल हो, तुरंत समझ लेतीं कि उसका सारांश क्या होगा? वह बहुत तेज पढ़ती भी थीं ...

प्रधानमंत्री पद ग्रहण करते ही (1968) श्रीमती इंदिरा गांधी ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में जो भाषण दिया था, वह उनके जीवन और राजनीति के सोच की एक साफ सुथरी तस्वीर थी – जिसके प्रत्येक शब्द से समझा जा सकता है कि वह युद्ध, शांति,

सद्भाव और समाजवाद को लेकर क्या सोचती थीं, और उन सोचों के लिए सारे जीवन किस तरह कार्यरत रहीं।

आज जब महाशक्तियाँ विश्व शांति का मुखौटा लगाकर हर क्षण अशांति के बादलों को विश्व भर में फैला रही हैं — तब इंदिरा जी के शब्द समूचे भारत ही नहीं, समूची मानव जाति के लिए उनकी सच्ची निष्ठा और जीवन के प्रति आस्था को व्यक्त करते हैं। वे कहती थीं —



भारत रत्न—इंदिरा

''... भारत में हम लोगों पर महात्मा गांधी का बहुत जबरदस्त प्रभाव रहा है। हम इस बात में विश्वास करते हैं कि मनुष्य और समाज का विकास इस आधार पर होता है कि उसने किसी हद तक आत्मसंयम से काम लिया है। बल प्रयोग को छोड़ा है। जवाहरलाल नेहरू आधुनिक राजनैतिक विचारधारा वाले व्यक्ति थे। उन्होंने महात्मा गांधी की बुनियादी शिक्षा को ग्रहण किया था। उन्होंने देशों के बीच संबंधों के नये रिश्ते बनाने की कोशिश की थी। उन्होंने शांतिपूर्ण जीवन की हिमायत की थी। इस बारे में वे कभी थके नहीं। उनका विश्वास था कि इस दुनिया में, जो इन झगड़ों में ग्रस्त हैं, भय न होकर स्वतंत्रता हो, संदेह न हो निष्ठा हो, अविश्वास न हो, भरोसा हो, तो उससे देशों के बीच मित्रता बढ़ेगी ...

इस विचारधारा से कई राजनेताओं और राष्ट्रनेताओं ने सहमति व्यक्ति की थी। धीरे-धीरे यह बात मानी जाने लगी थी कि कितनी ही कठिनाइयाँ सामने आएँ, शांतिपूर्ण सहजीवन से ही लड़ाई के बाद की दुनिया में विवेकपूर्ण तरीकों से झगड़े हल हो सकेंगे। उनका कहना था। ''... अंतर्राष्ट्रीय मामलों में अगर बल-प्रयोग का त्याग न किया गया और राष्ट्रों के अधिकार और जातियों की समानता का आदर न किया गया तो तनाव को कैसे कम किया जा सकेगा? अथवा लड़ाई के खतरे को कैसे दूर किया जा सकेगा? सारा विश्व बुरे चक्र में फँस गया है — इसके कारण राज्यों के बीच संबंध अच्छे करने का अच्छा अंतर्राष्ट्रीय तंत्र भी धीरे-धीरे शिथिल पड़ता जा रहा है। और उसके अंततः समाप्त होते जाने का खतरा है।

वे युद्ध के विरुद्ध थीं। यहाँ तक कि साधारण सी हिंसा भी उन्हें गहरी चोट पहुँचा दिया करती थी। भले ही वह चेहरे पर भाव न व्यक्त करती हों, किन्तु जहाँ-तहाँ बार-बार शांति और परस्पर सौहार्द्र की बातें करना, शांति जुटाने में यथाशक्ति जुटे

रहना, उनके उस स्वभाव को दिखाता था जो भीतर से अत्यंत कोमल था। वे व्यवहार में भारतीय दर्शन और संस्कृति से जुड़ी हुई थीं। विश्व में सदा ही शांति का समर्थन करते रहने के उनके बुनियादी संस्कार थे।

यह नई बात नहीं है कि भारत ऐटमी अस्त्रों का सदा ही विरोधी रहा है। यही नहीं नीतिरूप में भी भारत ने सदा ऐटमी अस्त्रों का विरोध करते हुए ऐटमबम न बनाने का निश्चय किया। इस निश्चय को बार-बार दोहराकर भारतीय प्रधानमंत्री के रूप में इंदिरा जी कहती रहीं कि विश्व शांति थोथे नारों से नहीं, बल्कि व्यवहार रूप में उन्हें लाने पर ही हो सकती है उनका यह विचार था कि जो दूसरों को डराता नहीं, वही भयमुक्त हो सकता है। भारतीय जनता सदा ही निडर रही। यही निडरता थी, जिसके कारण उधार के अस्त्रों पर लड़नेवाले देशों को भारतीय सेनाओं ने हर हमले के जवाब में केवल साधारण और स्वनिर्मित अस्त्रों से पराजित ही नहीं किया, बल्कि दूर तक खदेड़ भी डाला। ...अहिंसा से बड़ी कोई शक्ति नहीं होती, यह गांधी जी ने कहा था, इंदिरा गांधी ने जीवन व्यवहार में इसे उतारकर सारी दुनिया के सामने एक मिसाल पेश कर दी।

□□

यह नई बात नहीं है कि जब-जब शांति और शक्ति का परस्पर सम्मिलन हुआ है तब-तब उसे वह आदमी ही नहीं सह सका, जिसकी रक्षा के लिए वह होता है। इंदिरा जी के साथ भी वही हुआ। ठीक उसी मुद्रा में जैसा कभी महात्मा गांधी के साथ हुआ था ... अंतर इतना ही है कि महात्मा गांधी संत थे, इंदिरा संतमूल्यों पर शासन करने वाली एक राजनेत्री।

1984...

अक्तूबर की अंतिम तारीख – 31. समय – सुबह ...

भारतीय इतिहास ही नहीं, विश्व इतिहास की एक बड़ी

घटना घटी ... इस घटना ने सारे भारत ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया के शांतिप्रिय देशों, नागरिकों को हिला डाला। धर्म निरपेक्षता, सच्चाई और ममता के नाम पर इससे बड़ा थप्पड़ शायद ही आदमी ने अपने मुँह पर मारा हो। पर उस सुबह यही थप्पड़ मारा गया। एक पागलपन को पहुँची मनः स्थिति ने धार्मिक उन्माद को अति तक पहुँचा दिया। उन्मादी स्वयं अपने धर्म को ही भूल जाया कारता है। धर्म के नाम पर अधर्म का ऐसा किस्सा भारतीयों ने अपने ही देश की धरती पर लिख दिया। इससे उनको स्वयं ही लाज आती रहेगी।

श्रीमती इंदिरा गांधी उस दिन सुबह 1 सफदरजंग रोड के अपने निवास से कार्यालय की ओर जा रही थीं। कार्यालय–1, अकबर रोड पर उनके पीछे कुछ लोग चल रहे थे। वे निवास से कार्यालय तक सदा ही पैदल जाया करती थीं। कुल 10-15 सैकेंड का रास्ता है यह।

उस दिन भी हमेशा की तरह वह निश्चित समय पर कार्यालय में पूर्व निर्धारित समय पर लोगों से भेंट करने जा रही थीं। किसी विशेष व्यस्तता के कारण उस दिन श्रीमती गांधी के वे सभी कार्यक्रम रद्द हो चुके थे, जो केवल दर्शन के लिए होते थे। यह सारा समय पीटर उस्तिनोव नामक एक प्रसिद्ध लेखक और फिल्मकार को मिला था। पीटर दिए गए कार्यक्रम से कुछ समय पहले ही भेंटवार्ता संबंधी सभी व्यवस्था कर चुके थे। वह अपने पूरे ग्रुप के साथ वहाँ पहुँचे थे। इस भेंट वार्ता का फिल्मीकरण किया जाना था।

श्रीमती गांधी के पीछे-पीछे चल रहे स्टाफ में चार व्यक्ति थे। क्रमशः नारायण सिंह, रामेश्वरदास, आर.के. धवन और नाथूराम। यह निजी स्टाफ यथाशक्ति श्रीमती गांधी की गति से गति मिलाए जा रहा था। इंदिरा जी को बहुत तेज चलने की आदत

थी। वह जीवन, व्यवहार, कर्म किसी भी क्षेत्र में कभी हल्की, धीमी रफ्तार से चलने की आदी नहीं रही थीं।

उस दिन भी वह तेज गति से ही चली थीं ... पर कौन जानता था कि आज भारतीय इतिहास के सामने अचानक एक पत्थर लुढ़ककर आ गिरेगा। एक दुःस्वप्न की तरह, एक ऐसा आघात पहुँचा देगा, जिसे भारत सदियों तक याद रखेगा।

प्रधानमंत्री निवास की सुरक्षा व्यवस्था सदा की तरह कड़ी थी। निवास और कार्यालय परस्पर जुड़े हुए थे। और यह समूचा क्षेत्र इस कड़ी सुरक्षा व्यवस्था के अंतर्गत था।

जैसाकि अधिकारी सूत्रों ने निरंतर दोहराया है – व्यवस्था पूर्ववत और कठोर थी। पर कोई नहीं जानता था कि इसी तथाकथित सुरक्षा व्यवस्था के पीछे क्रूर मंत्रणाएं चल रही थीं। उन्हीं मंत्रणाओं का परिणाम थी वह रक्तिम सुबह ...

□□

10 से 15 सैकेंड के बाद श्रीमती गांधी निवास से कार्यालय में होतीं किन्तु ... वैसा हो नहीं सका। मौत ने बहुत पहले घात लगा रखी थी। यह घात किस रंग,व्यक्ति या चेहरे का मुखौटा लगाकर आएगी – निश्चित नहीं। पर यह आई ...

श्रीमती गांधी बीच रास्ते पर बढ़ रही थीं कि एक कोमल अभिवादन शब्द आया, नमस्ते...

सदा की तरह बेअन्त सिंह यह नमस्ते उच्चारित करता हुआ गेट खोलने आगे बढ़ा .. वह सशस्त्र था। श्रीमती गांधी अभिवादन के उत्तर में रोजमर्रा की तरह मुस्करायें और कुछ कहें, इससे पहले ही बेअन्त सिंह ने फुर्ती से अपना रिवाल्वर निकालकर उनकी ओर गोलियाँ दागना शुरू कर दिया ... श्रीमती गांधी के होठों से एक चीख निकली और वह धरती पर गिरने लगीं...

यह सब कुछ इतनी तेजी से और तीव्रगति से हुआ कि

श्रीमती गांधी के पीछे चल रहा उनका निजी स्टाफ हक्काबक्का होकर देखता ही रह गया। उनके होंठ खुलें, आवाज निकले इसके पहले ही दूसरी ओर सतवंतसिह प्रकट हुआ और उसने श्रीमती गांधी पर अपनी स्टेनगन से धुँआधार गोली बरसाना प्रारंभ कर दिया। यह सब कुछ ही सैकेंडों में हुआ था और इसके साथ ही कुछ क्षणों के भीतर एक ऐसी घटना घट गई जिसने भारतीय इतिहास की सदियाँ झकझोर डालीं।

भारतीय विश्वासों, मूल्यों और धार्मिक आस्थाओं के साथ-साथ मानव मूल्यों को भी गोलियाँ लगीं। परम्परा नई नहीं थी ... अपनों से ही विश्वासघात पाना। घटना यों दोहरायी जाएगी – कौन जानता था?

जिस धार्मिक सद्भाव के लिए भारत की ही राजधानी दिल्ली में कुछ दशक पूर्व राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शरीर को छलनी होना पड़ा था, उसी धार्मिक सद्भाव और देश की एकता के लिए श्रीमती गांधी के कोमल शरीर को गोलियों के क्रूर प्रहार सहने पड़े।

अपनों से शिकायत कौन करे? और शिकायत अपने से न करें, तो किससे करें? यह दुविधापूर्ण स्थिति यदि महात्मा गांधी की मृत्यु के कारण भारतियों की बनी थी तो इंदिरा जी की हत्या पर भी यही दुविधा थी, जो उस क्षण कम से कम न ठीक तरह आँसू बहाने दे रही थी, न ही आँसू थाम पाने की स्थिति में थी।

यह स्थिति थी बदहवासी और बेबसी की। एक ऐसी मजबूरी और लाचारी की, जिसका आदि अंत नहीं दीख रहा था। सिर्फ हताशा फैलकर रह गई थी करोड़ों नर-नारियों के चेहरों पर। मन सन्नाटे से भर गए थे। विश्वास धूमिल पड़े और बहुत हद तक लगा कि जैसे सच्चाई की रोशनी ही दुनिया में बेमानी होने लगी है। ...रह गया है सिर्फ पागलपन...

बेअन्त सिंह ... पिछले छह बरसों से प्रधानमंत्री के सुरक्षा

गार्ड के रूप में तैनात था। वह शांत स्वभाव का आदमी कहलाता था। उसकी लम्बाई थी 5 फुट 4 इंच। विभागीय रिपोर्ट भी ठीक थी उसकी। कहा जाता है कि प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की कई विदेश यात्राओं में भी बेअन्त सिह सुरक्षा गार्ड रहा था। उसकी ड्यूटी आठ घंटे तक प्रधानमंत्री की सुरक्षा के लिए रहा करती थी। सचिवालय के छिटपुट काम भी वह करता रहता था। पारिवारिक और सामाजिक तौर पर भी बेअन्त की स्थिति ठीक ठाक थी। यहाँ तक विश्वसनीय,कि एक बार कहते हैं कि किसी से बातचीत चलने पर प्रधानमंत्री से किसी ने पूछ भी लिया था क्या सिक्खों पर आप विश्वास करती हैं? आपके सुरक्षा गार्ड में तीन सिक्ख हैं। प्रश्न की मुद्रा में किए गए सवाल को लेकर इंदिरा जी ने आश्चर्य से प्रश्नकर्ता को देखा था, फिर जवाब दिया था – ''आप किस पर अविश्वास की बात कर रहे हैं? उन्होंने मुड़कर बेअन्त सिह की ओर देखा था, बोली थीं – आप विश्वास की बात कर रहे हैं ना, तो ... तो यह पिछले कई बरसों से मेरे सिक्योरिटी गार्ड हैं ...

□□

किसी लेखक ने बेअन्त द्वारा इंदिराजी पर चलाई गई गोलियों को लेकर कहा है – कौन सोच सकता था ? ... यह सब ऐसे ही हुआ जैसे जिस पौधे को सहेजने के लिए माली रखा जाए, वही पौधे को झुलसा डाले ...

पर यह हुआ था और बिल्कुल इसी तर्ज में हुआ था। सुबह थी, पर देश के भविष्य के आकाश पर छाई काली घटा भरी सुबह ... करोड़ों नर-नारी, जिनमें, बाल, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी थे – आँसू छलछलाई आँखों से देखते रह गए थे आसमान की ओर – हे ईश्वर ...। क्या सदा ही सत्य को ऐसी कठोर परीक्षा देनी पड़ती है? ... क्या मनुष्यता को हमेशा ही मूल्यों की रक्षा के लिए शहादत देते रहना तुम्हारा परंपरागत न्याय बन चुका है?

क्या बलिदान के बिना सत्य की उपलब्धि नहीं होती?

□□

जिस सुबह इंदिरा जी पर गोलियों की यह बौछार हुई उसके पूर्व भुवनेश्वर की एक आमसभा में भाषण करते हुए वह बोलीं थीं– अगर मैं मर भी जाऊँ तो मेरे खून की हर बूँद इस देश के काम आएगी ... और दूसरे दिन सुबह वह दुर्भाग्यपूर्ण घटना घट गई।

जिस गोली ने श्रीमती गांधी को हमसे छीना वह क्षेत्रवाद और सांप्रदायिकता के जहर से तैयार हुई और महात्मा गांधी की हत्या के बाद भारतीय राजनीति में एक और दर्दनाक लहर बनकर बिखर गयी ...

इंदिरा जी पर गोली बारी इतनी हड़बड़ा देने वाली घटना थी कि उस समय किसी भी व्यक्ति का मस्तिष्क अपने सिलसिले को कायम नहीं रख सकता था। बदहाली और हड़बड़ी में ही उन्हें अस्पताल ले जाया गया। उनके साथ उनकी पुत्रवधू श्रीमती सोनिया गांधी, निजी चिकित्सक और आर.के. धवन आदि गए। श्रीमती गांधी को "आल इंडिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट" ले जाया गया। उस समय भी श्रीमती गांधी के घावों से लहू लगातार रिस रहा था, वह लँहू, जिसकी एक-एक बूद देश की सेवा के लिए सचमुच ही अर्पित हो गई थी। यहाँ के वरिष्ठ डाक्टरों में से मेडिकल विभागाध्यक्ष डा. जे. एल. गुलेरिया ने उन्हें सबसे पहले देखा। हृदयरोग विशेषज्ञ के एक दल ने उनका तीव्रगति से उपचार प्रारंभ किया पर अथक प्रयासों के बावजूद भी श्रीमती गांधी को बचाया नहीं जा सका।

जिस समय यँह हृदयविदारक घटना घटी, राष्ट्रपति श्री जैलसिंह विदेश यात्रा पर थे। वह तुरंत सभी कार्यक्रम स्थगित करके स्वदेश लौट पड़े। श्रीमती गांधी के पुत्र श्री राजीव गांधी भी पश्चिम बंगाल के दौरे पर थे। उन्हें ठीक आमसभा के दौरान यह दुखद सूचना दी गई। राजीव ने आश्चर्यजनक

संयम से काम लिया और दिल्ली की ओर लौट पड़े।

मंत्रिमंडल की आपातकालीन बैठक हुई, कांग्रेस संसदीय दल के नेता पद की शपथग्रहण का सर्वसम्मति से निर्णय हुआ। सभी ने राजीव को अपना प्रधानमंत्री चुना। संसदीय दल की बैठक ने भी इसी निर्णय की पुष्टि की। 31 अक्तूबर को सायंकाल ही राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण की।

3 नवम्बर को शनिवार था। राजघाट और शांतिवन के बीचोंबीच "शक्तिस्थल" पर चंदन की लकड़ियों के बीच भारतीय स्वतंत्रता और आधुनिक भारत की कल्पना करने वाली इतिहास की इस महान नारी की पार्थिव देह को उनके पुत्र श्री राजीव गांधी ने अग्नि को समर्पित किया। किंतु यह केवल उनका शरीर विसर्जन था ...

आत्मा भारत के कोने-कोने में आज भी बिखरी हुई है, सदा बिखरी रहेगी। ... वे स्वप्न जिन्होंने नए भारत की बुनियाद रखी थी, अनेक साकार हो चुके हैं और अनेक साकार हो रहे हैं .... वे साकार स्वप्न सदा-सदा जीवंत रहेंगे ... क्योंकि मृत्यु होती है – मानव देह की। विचार और कर्म मनुष्य मात्र के भीतर पीढ़ियों तक अमर रहते हैं ... वे समय और काल की परिधि से बाहर हैं।

इंदिरा जी के जीवन के कुछ अविस्मरणीय दिवस

19 नवम्बर, 1917	जन्म: इलाहाबाद
1937-38	हिटलर की तानाशाही के शिकार लोगों से स्विटजरलैंड में भेंट
मार्च, 1942	फिरोज़ गांधी से विवाह
सितम्बर, 1942	जेल में
सितम्बर, 1943	राजीव गांधी का जन्म
1943	पहली बार अकेले रूस-यात्रा
1955	कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्या
1959	कांग्रेस की अध्यक्षा
27 मई, 1964	पंडित जवाहरलाल नेहरू का निधन
2 जून, 1964	श्री लालबहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्री काल में केन्द्रीय स्तर की मंत्री, विभाग—सूचना प्रसारण
22 जनवरी, 1966	प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण
फरवरी, 1967	आम चुनावों में कांग्रेस की शानदार विजय
12 मार्च, 1967	दोबारा प्रधानमंत्री
19 जुलाई, 1969	प्रमुख भारतीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण
12 अगस्त, 1969	वी.वी. गिरी का राष्ट्रपति उम्मीदवार के नाते समर्थन दिया जाना

20 अगस्त, 1969	गिरि की विजय से कांग्रेस में हड़कम्प, कांग्रेस का विभाजन, इंदिरा के नेतृत्व में कांग्रेस का बहुमत और संगठन कांग्रेस के नाम से कांग्रेस का एक अलग छोटा हिस्सा बनना
मार्च, 1971	आम-चुनाव, इंदिरा गांधी का प्रसिद्ध नारा – 'गरीबी हटाओ'
18 मार्च, 1971	तीसरी बार प्रधानमंत्री बनना, मंत्रिमंडल बनाना
3 दिसम्बर, 1971	भारत पर पाकिस्तानी हमला
4 दिसम्बर, 1971	भारतीय सेना का मुक्तिवाहिनी (तब पाकिस्तान और बाद में बंग्लादेश) की सहायतार्थ बंगलादेश में प्रवेश
1972	बंगलादेश मुक्त, भारतीय सेनाओं के जबरदस्त युद्ध द्वारा
19 अप्रैल, 1975	अंतरिक्ष में पहला भारतीय उपग्रह
12 जून, 1975	चुनाव अवैध घोषित
4 जुलाई, 1975	आपातकाल की घोषणा
4 जुलाई, 1975	अति-उग्रवादी 36 संगठनों पर प्रतिबंध
7 नवम्बर, 1975	सुप्रीम कोर्ट द्वारा उत्तर प्रदेश हाईकोर्ट के फैसले को रद्द किया जाना
18 फरवरी, 1977	इंदिरा जी द्वारा आम चुनाव करवाने की घोषणा
22 मार्च 1977	जनता पार्टी से कांग्रेस की पराजय और इंदिरा गांधी का पदत्याग
1980	श्रीमती गांधी पुनः सत्ता में
31 अक्तूबर, 1984	एक धार्मिक उन्मादी द्वारा इंदिरा गांधी पर निर्ममता से गोलियाँ चलाना, मृत्यु।